मंगल सूत्र

चैतन्य स्वभाव

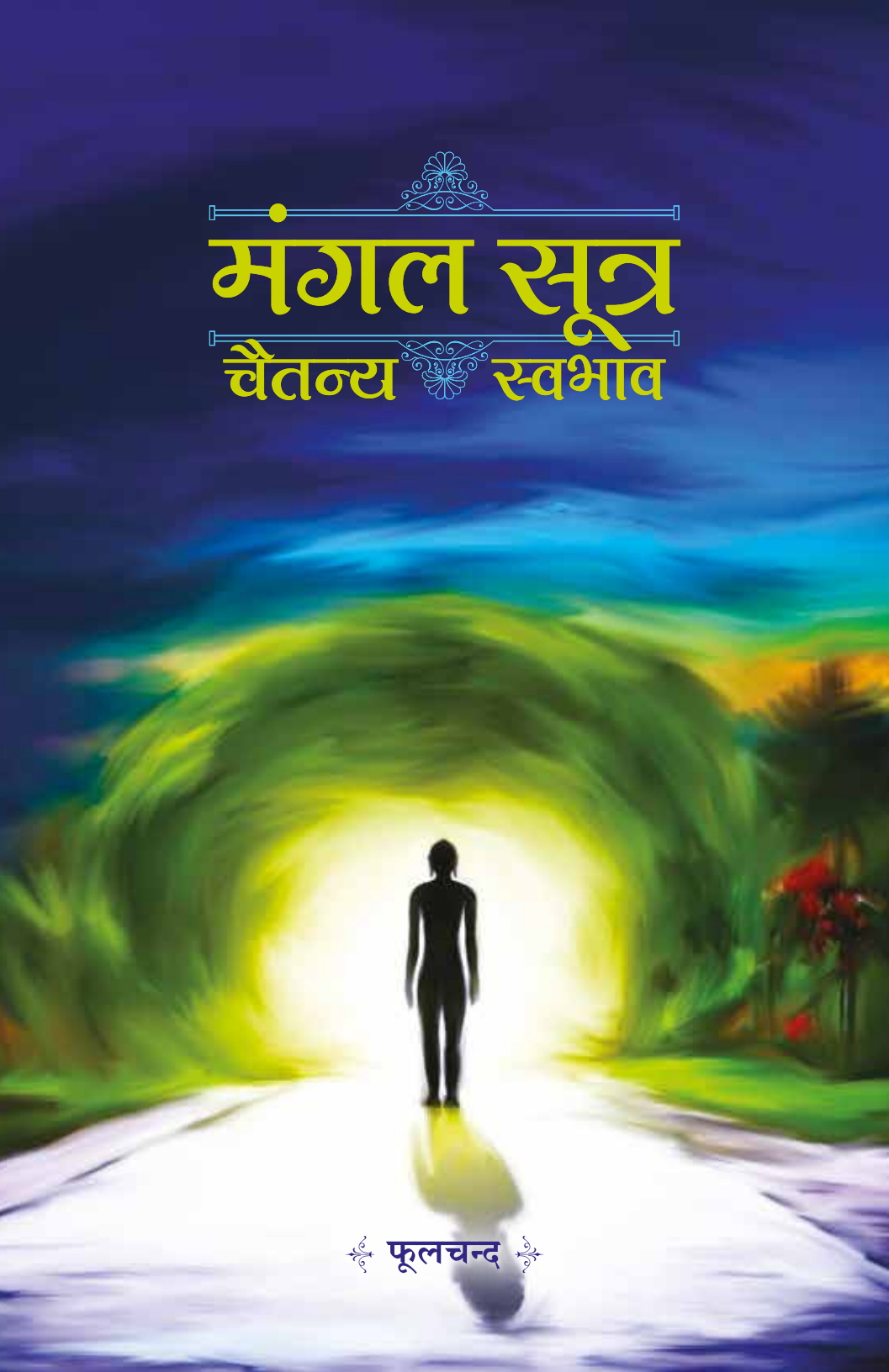

फूलचन्द

देश-विदेश की 18 भाषाओं में उपलब्ध
लेखक के 7000 घण्टे में से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रवचन
www. fulchandshastri.com

मंगल सूत्र, आत्मसिद्धि शास्त्र रहस्य, आध्यात्मिक साधना प्रश्नोत्तरमाला, तत्त्वचर्चा, साधना विशेष, साधना सत्संग शिविर, समयसार, प्रवचनसार, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, मोक्षमार्ग प्रकाशक, तत्त्वार्थसूत्र, गुणस्थान विवेचन, श्रीमद् राजचन्द्र वचनामृत, बहन श्री चंपाबेन के वचनामृत, पंचास्तिकायसंग्रह, ज्ञान से ज्ञायक तक, बारह भावना, बाईस परिषह, 47 शक्तियाँ, अलिंगग्रहण प्रवचन, अपरिग्रह, अपूर्व अवसर, जैन जीवन जीने की कला, आत्मसिद्धिसार, आत्मानुभूति की पूर्वभूमिका, पं श्री दौलतराम जी कृत छहढाला, धर्म के दस लक्षण, दशहरा, दीपावली, रक्षाबंधन, द्रव्य स्वभाव पर्याय स्वभाव, द्वादशानुप्रेक्षा, गजपंथा साधना, गृहित मिथ्यात्व, गुरुदेव श्री कानजीस्वामी, ज्ञान स्वभाव ज्ञेय स्वभाव, कारण-कार्य व्यवस्था, क्रमबद्धपर्याय, क्षणिक का बोध और नित्य का अनुभव, मोह की महिमा, नय, निश्चय-व्यवहार, प्रतिक्रमण, साधक की भूमिका, साधनाविधि, साधु के अठ्ठाईस मूलगुण, सम्यग्दर्शन, स्वानुभूतिदर्शन, तत्त्व का अभ्यास, विकल्प से निर्विकल्प, इन्द्रिय और मन में सुखबुद्धि, भावलिंगी साधु, महावीरजयंति, ध्यान, मनुष्य जीवन की महत्ता-दुर्लभता-सार्थकता, सदाचार, अहिंसा एवं शाकाहार, भक्ति प्रवचन, आत्मजागृति, मृत्यु की कला, जैनधर्म रहस्य आदि विषयों पर ओडियो एवं विडियो प्रवचन सुने और डाउनलोड किये जा सकते हैं।

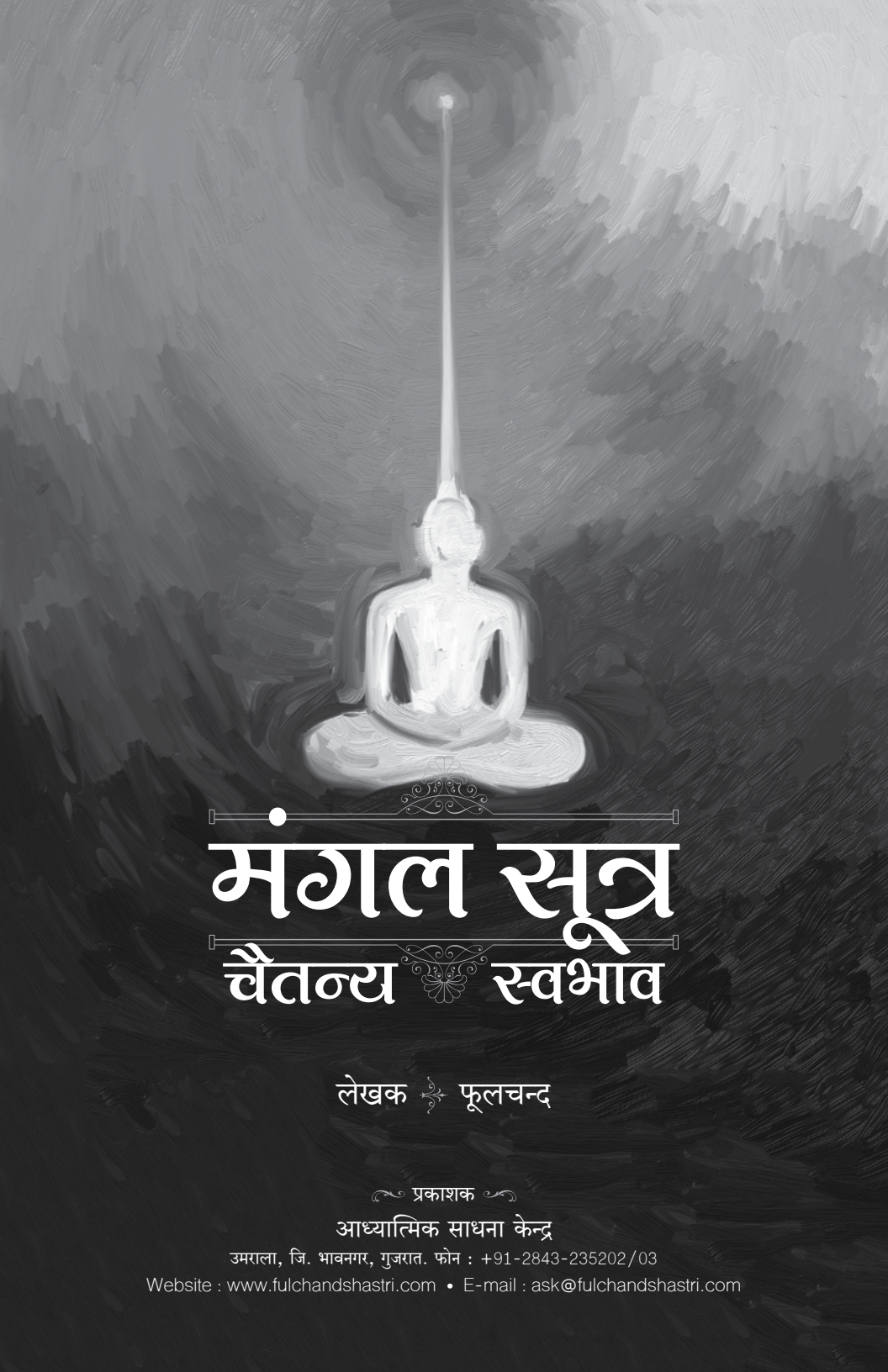

मंगल सूत्र

चैतन्य स्वभाव

लेखक फूलचन्द

प्रकाशक
आध्यात्मिक साधना केन्द्र
उमराला, जि. भावनगर, गुजरात. फोन : +91-2843-235202/03
Website : www.fulchandshastri.com • E-mail : ask@fulchandshastri.com

प्रकाशकीय

आदरणीय विद्वान श्री पण्डित फूलचंदभाई शास्त्री द्वारा लिखित "मंगल सूत्र–चैतन्य स्वभाव" कृति प्रकाशित करते हुये आध्यात्मिक साधना केन्द्र परिवार अत्यंत हर्ष का अनुभव करता है। इससे पूर्व भी लेखक की अनेक रचनाओं का प्रकाशन आध्यात्मिक साधना केन्द्र, उमराला द्वारा विगत अनेक वर्षों से हो रहा है।

लेखक की अनेक रचनाओं में से हिन्दी एवं गुजराती भाषाओं में प्रकाशित "ज्ञान से ज्ञायक तक" नामक रचना देश–विदेश में सर्वाधिक लोकप्रिय हुयी है। "ज्ञान से ज्ञायक तक" के दूसरे अंक समान गहन रहस्य से भरी हुयी यह "मंगल सूत्र–चैतन्य स्वभाव" कृति में आत्मा के ज्ञान स्वभाव सम्बन्धी अत्यंत गहराई से विवेचन किया गया है। यह कृति लेखक के जीवन की समस्त कृतियों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना है। अत: साधक को इस कृति का अध्ययन अवश्य करना चाहिए।

रामगंजमण्डी निवासी श्री दिनेश जी जैन ने "मंगल सूत्र–चैतन्य स्वभाव" पर हुये प्रवचनों को लिपिबद्ध किया है एवं चितौडगढ निवासी आदरणीय विद्वान श्री राजेन्द्रकुमार जी जैन ने इस कृति का विशेष अध्ययन एवं निरीक्षण करके प्रस्तावना लिखी है, अत: आध्यात्मिक साधना केन्द्र, उमराला की ओर से मैं आपके प्रति भाव सहित आभार व्यक्त करता हूँ।

मल्टी ग्राफिक्स ने "मंगल सूत्र–चैतन्य स्वभाव" का मुद्रण करके आपके करकमलों तक पहुँचाने में हृदयपूर्वक सहयोग दिया है, अत: आध्यात्मिक साधना केन्द्र परिवार मल्टी ग्राफिक्स एवं श्री मुकेशभाई जैन का आभार व्यक्त करता है। साथ ही जिन महानुभावों का इस कृति के प्रकाशन में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रुप से सहयोग प्राप्त हुआ है, उन सभी महानुभावों को धन्यवाद देता हूँ और भावना भाता हूँ कि वीतरागी वाणी का प्रचार–प्रसार सदैव होता रहें।

- किशोरभाई जैन, उमराला

प्रस्तावना

आदरणीय विद्वान पं. फूलचंद जी शास्त्री वर्तमान आध्यात्मिक जगत में एक ज्वाजल्यमान नक्षत्र है। आप अल्पवय में ही एक सिद्ध हस्त लेखक, सफल प्रवचनकार एवं उद्भट धर्म प्रचारक है। आप गुजराती, हिन्दी एवं अंग्रेजी में अब तक बीस से भी अधिक पुस्तकें लिख चुकें हैं तथा देश–विदेश की बीस भाषाओं से भी अधिक भाषाओं में 7000 घण्टों से भी अधिक प्रवचन आपकी वेबसाईट www.fulchandshastri.com पर उपलब्ध हैं, जो सुने जा सकते है एवं डाउनलॉड किये जा सकते हैं।

आदरणीय विद्वान से मेरा सम्पर्क पिछले वर्ष ही गजपंथा सिद्धक्षेत्र की पावन धरा पर हुआ। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानों मैं पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी के ही प्रवचन सुन रहा हूँ और मात्र चार दिन के अल्पकाल में ही मुझे मेरे जीवन में अद्भूत दिशाबोध की प्राप्ति हुई, तदर्थ: मैं आपके प्रति चिर ऋणी रहूँगा।

देवलाली में आपके "मंगल सूत्र–चैतन्य स्वभाव" विषय पर चार दिवसीय प्रवचन हुये। जब मैंने उन प्रवचनों को परोक्ष ओडियों पर सुना तो मुझे लगा कि ये प्रवचन अद्भूत है और इनका पुस्तकाकार होना आत्मार्थीजनों को अत्यंत लाभदायक सिद्ध होगा, तदर्थ: मैंने आदरणीय विद्वान से निवेदन किया। हमारा सौभाग्य है कि आज वे प्रवचन हमें पुस्तकाकार रुप में उपलब्ध हो गये हैं, इसके लिये अत्यंत–अत्यंत आभार।

"मंगल सूत्र–चैतन्य स्वभाव" में प्रस्तुत सामग्री असाधारण है। भव्यजनों के मंगलमयी जीवन के लिये मंगलकारक मार्ग की उपलब्धि हेतु अत्यंत सरल एवं स्पष्ट भाषा में जैनदर्शन के सूक्ष्म आध्यात्मिक मर्म इसमें समाहित है। मोह नींद में सुसुप्त संसारीजनों को झकझोर कर जागृत करने में यह पुस्तक प्रबल निमित्त सिद्ध होगी, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। आशा है कि आत्मार्थी जन इस कृति का बार–बार पठन, मनन, निर्णय कर मंगल सूत्रों का मंगल हार पहनकर मोक्षलक्ष्मी का वरण करें, यही भावना है।

- राजेन्द्र जैन, चितौडगढ

index

अनुक्रमणिका

1. मंगल सूत्र 1
2. आध्यात्मिकता से पहले मानवता...5
3. सुधार से पहले जुडाव 7
4. मृत्यु महोत्सव 9
5. महल है मिट्टी और देह है राख ..13
6. जाना अनजाना हो जायेगा 15
7. यदि मान न होता तो 19
8. दमन से दु:ख और संयम से सुख 20
9. उदासीनता और निराशा 21
10. विभाव में भी स्वभावरुप परिणमन 22
11. ग्यारहवीं चैतन्य दिशा 26
12. साधना विधि 27
13. मैं कौन हूँ और कहाँ हूँ? 30
14. चैतन्य का चिन्तन 31
15. भाव से भीगने का भाव 33
16. विकल्प से निर्विकल्प 34
17. यह पद तुम्हारा पद नहीं 36
18. क्षयोपशम ज्ञान से पार ज्ञान स्वभाव 37
19. राग ही नहीं, वीतरागता के प्रदेश से भी न्यारा चैतन्य 40
20. पर्याय का आदर्श द्रव्य 43
21. मैं बिन्दु नहीं, बल्कि रेखा हूँ 44
22. संसार को सदा काल के लिये अलविदा 45
23. ज्ञायक और ज्ञायक का विकल्प..46
24. आत्मजागृति ही धर्म है 48
25. ध्याता–ध्यान–ध्येय का भेद कहाँ? 52
26. ज्ञानी ने आत्मा को जाना या आह्लादरुप आनन्द को? 54
27. चैतन्य के शिखर पर 56
28. भेदज्ञान की ज्योति 58
29. विकल्प होने पर भी विकल्पातीत...61
30. द्रव्य का अनुभूति की पर्याय में भी प्रवेश नहीं 64
31. आत्मानुभव ही प्रमाण 65
32. समाधि ही समाधान 67
33. केवली ही पूर्ण निर्विकल्प 71
34. जो समझ गया, वो समा गया 73

1. मंगल सूत्र

मंगलाति इति मंगलम्। मं+गल = जो पाप को गलाता है और मंग+ल = जो सुख को लाता है। चैतन्य स्वरुप ही पाप को गलाने वाली और सुख तक पहुँचाने वाली एक मात्र डोरी है। हाँ, यह वही चैतन्य स्वरुप है, जिसे समझे बिना इस जीव ने भूतकाल में प्रत्येक पर्याय में अनंत दु:ख भोगे हैं।

चैतन्य स्वरुपी निज शुद्धात्मा के आश्रय से पाप ही नहीं, पुण्य कर्म भी गल जाते हैं, समस्त कर्मो का क्षय हो जाता है। अत: चैतन्य स्वरुपी निज शुद्धात्मा ही वास्तविक मंगल सूत्र है। जब जीव चैतन्य स्वरुपी निज शुद्धात्मा को पर्याय में अनुभव करता है, तब वह मंगल सूत्र को पर्याय में धारण करता है। जिस पर्याय ने चैतन्य स्वरुपी मंगल सूत्र को धारण किया है, वास्तव में वही पर्याय अखंड सौभाग्यवती है।

आत्मा को चैतन्यमात्र या ज्ञानमात्र कहा है। यद्यपि आत्मा में ज्ञान के अतिरिक्त अनंत गुण है, आत्मा अनंत गुणाधिपति है, लेकिन उन समस्त गुणों की पहचान कराने वाला ज्ञान ही है। ज्ञान से ही स्व और पर की पहचान होती है। अत: ज्ञान की मुख्यता से भगवान आत्मा का स्वरुप समझाते हैं। चैतन्य स्वभावी भगवान आत्मा अनादि-अनंत निरंतर नित्य जाननेरुप परिणमित होते हुये भी अपने जानपने में, चैतन्यपने में स्थित है। मैं ज्ञानमात्र हूँ। मैं ज्ञान स्वभाव में स्थित हूँ। जैसे आम का रस काँच के गिलास से चाँदी के गिलास में और चाँदी के गिलास से सोने के गिलास में बदलता होने पर भी आम का रस कदापि मौसम्बी के रसरुप परिणमित नहीं हो जाता है। ऐसे ही आत्मा में प्रतिसमय जानना-जानना यह परिणमन निरंतर चल ही रहा है और इस जानने-जाननेरुप परिणमन में भी चैतन्यपना तो टिका हुआ ही रहता है। ज्ञान प्रतिसमय जानने-जाननेरुप परिणमित होकर भी रागादि भावरुप परिणमित नहीं होता है। अत: साधक को प्रत्येक ज्ञेय को जानते समय स्वयं की चैतन्य सत्ता की जागृति बनी रहे।

जैसे कुएँ में पानी कहीं बाहर से नहीं आता है, पानी तो पहले भी था, सिर्फ मिट्टी–पत्थर का आवरण हटने पर पानी व्यक्त दिखाई देता है। ऐसे ही आत्मानुभूति के काल में चैतन्य स्वभाव का जन्म नहीं होता, ज्ञान तो अनादि–अनंत सत्ता स्वरुप है, सिर्फ विकल्प का आवरण हटने पर निर्विकल्प आत्मानुभूति होने पर वह प्रत्यक्ष अनुभव में आता है।

जैसे किसी दर्पण में कमरे की एक दीवार प्रतिबिम्बित होती हो और फिर वह दर्पण दूसरी दीवार की ओर पलट जाये, तो वह दर्पण फूट नहीं जाता। यहाँ तक कि कमरे की चारों दीवारें दर्पण में प्रतिबिम्बित होती हैं, परन्तु वे दीवारें दर्पण में प्रविष्ट नहीं हो जाती हैं। ऐसे ही यह मनुष्य के शरीररुपी राख की दीवार से आत्मा का ज्ञानदर्पण देह परिवर्तन होने के बाद देव के शरीररुपी दीवार की ओर पलट जाये, तो ज्ञानदर्पण नष्ट नहीं हो जाता और देव के शरीररुपी दीवार ज्ञानदर्पण में मिल नहीं जाती है। हे चैतन्य परमात्मा! चारों गतियों के देहरुपी दीवारें ज्ञानदर्पण में प्रतिबिम्बित होने पर भी ज्ञानदर्पण निर्लेप एवं निराला ही रहता है। देहरुपी दीवारें ही नहीं, जिनका प्रतिसमय उत्पाद–व्यय होता है, ऐसे रागादि विकल्प भी ज्ञानदर्पण में प्रतिबिम्बित होते हैं, परन्तु वे भी ज्ञानदर्पण में प्रविष्ट नहीं होते हैं।

चैतन्य तत्त्व निराला और न्यारा है। जैसे हम आम खरीदते वक्त आम के छिलके और गुठली के भी पैसे चुकाते हैं। परन्तु जब आम खाते हैं, तब आम का छिलका और गुठली दोनों को निकालकर आम से अलग कर देते हैं। क्योंकि हम जानते हैं कि छिलका भी आम नहीं है और गुठली भी आम नहीं है। ऐसे ही आत्मा शरीर और रागादि भाव के साथ होने पर भी आत्मानुभव में शरीर भी आत्मा नहीं है और रागादि भाव भी आत्मा नहीं है। जैसे हमें छिलका बाहर से दिखाई देता है, परन्तु गुठली नहीं। ऐसे ही हमें शरीर तो बाहर से दिखाई देता है, परन्तु रागादि भाव नहीं। जैसे छिलके और गुठली के अतिरिक्त जो असली आम है, वही मीठे रस से परिपूर्ण है। ऐसे ही चैतन्य परमात्मा ज्ञान और आनन्द के रस से परिपूर्ण है। **चैतन्य का रसपान किये बिना रसनेन्द्रिय तो क्या? किसी भी इन्द्रिय के विषयों का त्याग नहीं हो सकता।** जैसे लोक में कुछ लोगों को छिलके और गुठली चुसने में

ही अधिक मजा आता है। ऐसे ही अज्ञानीजनों को शरीर और रागादिभावों में ही सुखबुद्धि होती हैं, वे चैतन्य रसपान करने से वंचित रह जाते हैं।

चैतन्य की अनुभूति होने से ज्ञानी सदाकाल अस्ति की मस्ती में ही मस्त रहते हैं। ज्ञानी को प्रत्येक ज्ञेय को जानने के काल में चैतन्य की धारा बहती ही रहती है। **चैतन्य में सुख है, ऐसा नहीं। मैं स्वयं सुख हूँ।** उन्हें कदाचित् दुःख भी जानने में आये, तो भी चैतन्य रस का अनुभव होता है। दुःख को जानकर भी चैतन्य रस की जागृति से ज्ञानी सुखी हैं।

हे चैतन्य परमात्मा! देहरुपी छिलके और रागादि भावरूपी गुठली को चूसते-चूसते तो अनंतकाल बीत गया, अब तो चैतन्य तत्त्व के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहिए। विराट अस्तित्ववान मंगल सूत्र ही मंगल सूत्र।

कहाँ पर्वत जैसा विराट अस्तित्ववान सिद्ध समान यह भगवान आत्मा और कहाँ छोटा-सा कण जैसी मिथ्यात्व की एक समय की पर्याय? भगवान आत्मा को पर्वत जैसा विराट अस्तित्ववान कहने का प्रयोजन यह है कि अनादिकाल से पुरुषार्थ की कमजोरी होने पर भी आत्मा का व्यय नहीं हुआ। परन्तु एक समय के सत्य पुरुषार्थ से मिथ्यात्व का व्यय हो जाता है, यही कारण है कि मिथ्यात्व को रजकण की उपमा दी है। अहो! एक मिथ्यात्व नामक छोटा-सा रजकण पर्वत जैसे विराट अस्तित्ववान भगवान आत्मा के दर्शन में बाधक होता है। सच ही है, यदि छोटा-सा रजकण आँख में गिर जाये और सामने विराट पर्वत हो, तो भी हमें नहीं दिखता है। **हे चैतन्य प्रभु! अनन्तकाल सोता रहा, बस अब तो प्रतिसमय जागृति रहे कि यह जो जानने-जाननेरुप प्रकाशित हो रही है, वह चैतन्य ज्योति ही तो है। यही मैं... यही मैं... यही मैं...।**

आत्मा शरीर में है और आत्मा में राग-द्वेष के भाव है। समझने योग्य खास बात यह है कि आत्मा जिस शरीर में है, उस शरीर से भी जुदा है और आत्मा में जो राग-द्वेष के भाव हैं, उन भावों से भी आत्मा जुदा है। शरीर से जुदा है अर्थात् संयोग से जुदा है। राग-द्वेष के भावों से जुदा है अर्थात् संयोगीभावों से जुदा है। प्रत्येक व्यक्ति अपने पिता और पुत्र से जुदा होता है।

पिता का अपनापन छोडना आसान है, पुत्र का नहीं। अज्ञानी इस सत्य को सुन लेता है कि शरीर मेरा नहीं है, परन्तु यह सुनते ही आश्चर्यचकित हो जाता है कि, राग–द्वेष के भाव भी मेरे नहीं हैं। **अरे प्रभु! कुछ वर्षों तक आत्मा के साथ रहने वाला यह शरीर भी जब मेरा नहीं है, तब एक समय से अधिक जिसका अस्तित्व नहीं है, ऐसा राग का भाव मेरा कैसे हो सकता है?** परन्तु राग का भाव आत्मा में से जन्म लेने वाला बेटा है न! इसलिये राग में से अपनापन छूटना तो दूर, वह भाव अपना नहीं है, यह सुनना भी रुचिकर नहीं लगता। **बाप की तरह बेटा भी पराया है, इस सत्य का स्वीकार होने पर ही मंगल यात्रा सफल हो सकती है। प्रतिसमय जागृति रहे कि राग का निजात्मा में प्रवेश ही नहीं है, अत: मैं परमात्मा हूँ। राग का किसी भी आत्मा में प्रवेश नहीं है, अत: प्रत्येक आत्मा परमात्मा है।**

देह संयोग है और राग संयोगीभाव है। संयोग एवं संयोगीभाव से भिन्न होना, प्रत्येक आत्मा का त्रिकाल द्रव्यस्वभाव है। **जब यह द्रव्यस्वभाव पर्याय में व्यक्त होता है अर्थात् जब आत्मा संयोगीभाव रहित होता है, तब अरिहंत अवस्था प्रकट होती है और जब देह के संयोग रहित होता है, तब सिद्ध अवस्था प्रकट होती है।** हे जीव! एक क्षण के लिये भी निराश होने की आवश्यकता नहीं है। शीतल स्वभावी पानी को सदा के लिये उष्ण नहीं रखा जा सकता। यदि हमेशा के लिये पानी को गरम रखने के लिये आग पर रखेंगे, तो पानी ही नहीं रहेगा। चैतन्य स्वभावी आत्मा परभाव में हमेशा के लिये कैसे रह सकता है? स्वभाव में स्थिर होना ही होगा।

रविवार से शनिवार तक सात दिन में भी सात राजू कैसे पार करना? अरे! सात राजू पार करने के लिये सात दिन नहीं लगते हैं। कोई भी दिन हो, एक ही समय में जीव सात राजू पार करता है। **रवि (सूर्य) के समान ज्ञान ज्योतिर्मय, सोम (चन्द्र) के समान शांत शीतल, पाप को गलाने वाला और सुख को लाने वाला मंगलसूत्र, शुद्ध–बुद्ध दुर्लभ भगवान आत्मा का अनुभव हुआ, तब ही गुरु का, वास्तविक शुक्रिया अदा किया और संसारचक्र की अनादिकालीन शनि की मनौती दूर हुई।**

2. आध्यात्मिकता से पहले मानवता

जैसे गंगा नदी में से किसी जैन ने अपने घड़े में और जैनेतर ने अपने घड़े में पानी भरा। दोनों घड़े में पवित्र गंगा जल होने पर भी पात्र के भेद के कारण हम पानी में भेद मान ले, तो हमारी अज्ञानता ही होगी। ऐसे ही देहरुपी पात्र के भेद कारण हम शुद्धात्मा में भेद मानते हैं, इसी अपराध के फल में अनंत संसार परिभ्रमण किया है और अनन्त दु:ख भोगे हैं।

है चैतन्य परमात्मा विचार करो! जब आलू और प्याज आदि जमीनकंद में आँखो से न दिखाई देने वाले अनन्त जीवों को परमात्मा जानकर हम उनके प्रति करुणा व्यक्त कर सकते हैं, तो संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्यों को परमात्मा की द्रष्टि से क्यों नहीं देख सकते? सत्य तो यह है कि एकेन्द्रिय जीवों को परमात्मा कहने में हमारे अहंकार को चोट नहीं पहुँचती, परन्तु संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य को परमात्मा के रुप में देखने से हमारे अहंकार को चोट लगती है। अनछने पानी में असंख्य परमात्माओं की गिनती तो हम सरलता से कर लेते हैं, परन्तु दिगम्बर और श्वेतांबर या देरावासी और स्थानकवासी आदि भेदों से हमारी द्रष्टि ऊपर ही नहीं उठ पाती। अनंत सिद्धो के साथ सिद्धशिला पर बैठने की भावना भाने वाले भोले जीवों! अपने आप से पूछो, अभी आपको अपने नौकर के साथ एक सौफा पर बैठने का साहस है क्या?

याद रहे, किसी व्यक्ति विशेष को नहीं, बल्कि वस्तु स्वरुप को लक्ष्य में रखकर इस सत्य का स्वीकार करना। जो जीव वस्तु स्वरुप को लक्ष्य में रखकर आध्यात्मिक साधना का अभ्यास करता है, उसे प्रत्येक आत्मा में परमात्मा दिखाई देता है। वह कभी भी भेद के बन्धन में फंसता नहीं है। यदि आप के पास पानी हो और राह में कोई प्यासा मिला, तो क्या आप यह देखोगे कि यह जैन है या अजैन? मुमुक्षु है या गैरमुमुक्षु? वहाँ तो वह सिर्फ पिपासु है। जब लौकिक पिपासु में भेद का आग्रह नहीं रखते, तो अलौकिक चैतन्य रस के पिपासु में भेद कैसा? सार यही है कि आध्यात्मिकता से पहले मानवता होनी अनिवार्य है।

महावीर भगवान का जीव पूर्व भव में सिंह की अवस्था में वन में माँस खाता था, परन्तु चारण ऋद्धिधारी मुनिराज ने उस सिंह को भी उपदेश दिया। यदि हम इस विराट द्रष्टि प्रदान करने वाले सर्वज्ञ प्ररुपित धर्म को सम्प्रदायों में न बाँटे तो अनेक पामर पात्र जीवों को सत्य तत्त्व की प्राप्ति हो सकती है। किसी जीव की पात्रता क्या? अरे! कोई भी जीव वीतराग–वाणी को सुनने के लिये बैठा है, यही उसकी पात्रता है। दूसरे जीवों की पात्रता का निर्धारण करने वाले क्या कभी अपनी पात्रता का विचार करते हैं? हे चैतन्य परमात्मा! किसी भी जीव का हीन मूल्यांकन न कर। स्वयं के अहंकार को छोडकर विशाल द्रष्टि रख। जीव के सभी प्रकार के आग्रह छूटने पर ही ऐसी अपूर्व दशा तब ही प्रकट हो सकती है।

विमान से यात्रा करते समय दायीं और बायीं दोनों कुर्सी वालों ने अशाकाहारी भोजन का संदेश दिया। वहाँ भी याद रहे कि वे माँस खा रहे हैं, ये उनकी चारित्र की कमजोरी है और मैं उन्हें पापी के रुप में देख रहा हूँ, यह मेरी श्रद्धा सम्बन्धी कमजोरी है। दूसरों की चारित्र सम्बन्धी कमजोरी से पहले स्वयं की श्रद्धा सम्बन्धी कमजोरी दूर करने का प्रयास करना चाहिए। हम नहीं जानते कि कौन जीव कब पलट जायेगा? कपड़े पर दाग लगता है, परन्तु हम कपड़े को फेंक नहीं देते। हम जानते हैं कि वह दाग धूल सकता है।

कभी–कभी जब आपको लगता होगा कि आपका बेटा केवली भगवान प्ररुपित धर्म का पालन करे, तब समझना कि आपको धर्म में कम और बेटे में अधिक रुचि है। जिसे धर्म की रुचि एवं महिमा होती है, उस जीव की भावना होती है कि जगत के सभी जीव इस धर्म को धारण करे।

गिरिजाघर हो या मस्जिद हो या खुला मैदान हो, कारागृह की चार दीवारों के अन्दर हो या बाहर हो, जिज्ञासु के सामने सत्य प्ररुपित करने में भय क्यों, आग्रह क्यों? मैं भगवान आत्मा त्रिकाल सत्य स्वरुपी हूँ। भय और आग्रह मेरा स्वभाव नहीं है। विराट द्रष्टि सिखाने वाले केवली प्ररुपित जन–जन के धर्म को पाकर भी जीवन में प्रयोग न करने के कारण हम जन्म–मरण के चक्कर में अटक गये और संसार अटवी में ही भटक गये।

3. सुधार से पहले जुडाव

जैसे अनार्य को अनार्य भाषा में समझाने पर ही उसे समझ में आता है। ऐसे ही आज के आधुनिक युग को विज्ञान की भाषा अधिक समझ में आती है। परन्तु जो व्यक्ति शब्दों के आग्रह में अटक जाते हैं, वे मंगल की यात्रा पर चलते तो हैं, परन्तु मंगल तक पहुँच नहीं पाते हैं। अहंकार एवं आग्रह छूट जाने पर दीवाली में अली और मुहर्रम में राम दिखाई देते हैं। शब्दों में भाव नहीं होते हैं, आत्मा में भाव होते हैं। याद रखो, **प्रेम की भाषा मनुष्य ही नहीं, पशु भी समझते हैं। जिसने प्रेम की भाषा समझ ली, उसने सब भाषा समझ ली।** जाति और वेष का आग्रह छोडने पर आज के युग में अनेक युवानौं को चैतन्य तत्त्व से परिचित कराया जा सकता है।

कुछ लोग चिंता व्यक्त करते हुये कहते हैं कि सद्गुरुदेव और कृपालुदेव के विरोधी बढ़ रहे हैं, अब तो कुछ न कुछ तो करना ही पडेगा। क्या करना पडेगा? हे भव्य! बस, पर्याय द्रष्टि छोडनी पडेगी। पर्यायद्रष्टि के कारण हमें विरोध दिखाई देता है। द्रव्यद्रष्टि प्रकट होते ही प्रत्येक आत्मा परमात्मा दिखाई देता है और विरोध कहीं भी नहीं दिखाई देता है।

जब कोई व्यक्ति, किसी अन्य व्यक्ति के बारे में कुछ कहता है कि यह व्यक्ति बहुत बुरा है, तब वह किसी अन्य के बारे में नहीं, बल्कि अपनी वर्तमान स्थिति को ही व्यक्त कर रहा है कि मैं कितना पर्यायद्रष्टि वाला हूँ। ज्ञानी तो अज्ञानी को भी भगवान आत्मा के रुप में देखते हैं। ज्ञानी की द्रष्टि में चैतन्य परमात्मा ही सर्वोत्कृष्ट है। झूठ बोलने वाले व्यक्ति की असली सजा यह नहीं है कि दुनिया उस झूठे पर विश्वास नहीं करती है बल्कि उसे असली सजा तो यह मिलती है कि वह किसी पर विश्वास नहीं कर सकता। हम जगत में जगत को नहीं देखते, बल्कि जगत में हमारी मान्यता को ही देखते हैं, यह देखते हैं कि मैं कैसा हूँ? कहा भी है, **द्रव्यद्रष्टि सो सम्यग्द्रष्टि और पर्यायद्रष्टि सो मिथ्याद्रष्टि।**

इस भूमिका में चैतन्य की चर्चा सुनकर साधर्मी जीवों के प्रति वात्सल्य भाव न जागे, तो समझना चाहिये कि चैतन्य तत्त्व की चर्चा सुनकर भी तत्त्व को यथार्थ ग्रहण नहीं किया। ज्ञानी को भी साधर्मी के प्रति वात्सल्य भाव तो होता है, परन्तु वात्सल्य भाव में उपादेय–बुद्धि नहीं होती। तथाकथित लोग तो एकांत से शास्त्र पढ़कर ऐसा चेहरा लेकर बैठ जाते हैं कि जैसे अभी क्षपक श्रेणी लगाकर अंतर्मुहूर्त में केवलज्ञान पाने वाले हो। हे चैतन्य परमात्मा! याद रहे, द्रष्टि तो निज परमात्म तत्त्व पर ही हो, परन्तु हम जिस भूमिका में हो, उस भूमिका के अनुरुप हमारा वर्तन हो।

हमें आज याद भी नहीं है कि पूर्वभवों में एकेन्द्रियादि जातियों में अनंत जन्म–मरण करने के बाद महा पुण्योदय से वीतरागी भगवान प्ररुपित धर्म पाया है। विशाल द्रष्टि प्रदान करने वाले इस महान धर्म को तथाकथित लोगो ने ही अपनी सीमा में बांधकर रखने का प्रयास किया है। यह महान धर्म सचमुच ही जन–जन का धर्म है, प्राणी मात्र का धर्म है, जीव मात्र का धर्म है। **नर से नारायण ही नहीं या पशु से परमेश्वर ही नही, यह धर्म तो जीव से शिव होने का धर्म है।**

चैतन्य चर्चा सुनकर यह भाव आना स्वाभाविक है कि जगत के सभी जीवों को यह बात सुनने और समझने को मिले। बस, इतनी जागृति बनी रहे कि मैं भगवान आत्मा इन भावों में कहीं–भी नहीं हूँ।

सद्गुरु का कार्य दर्पण जैसा होता है। जैसे दर्पण में देखकर व्यक्ति अपने कपड़े अपने–आप ठीक कर लेता है। ऐसे ही सत्संग का योग पाकर पात्र जीव अपने दोषों का निरीक्षण करके स्वभाव का आश्रय लेकर अपने दोषो को दूर कर देता है। किसी भी व्यक्ति को जबरदस्ती सुधारने का बोझ अपने पर लेने की बजाय हम स्वयं को सुधार ले, यही बहुत है।

यदि केवलज्ञान पर्वत का शिखर है, तो हम अभी पर्वत की तलहटी पर खड़े हैं। केवलज्ञान में छह द्रव्यों के समूहरुप सारे विश्व का कौलाहल ज्ञान में जानने में आता है, अभी इतना तो अभ्यास करे कि छह दर्शन के भेदरुप कौलाहल को सहज भाव से जाने। **किसी भी व्यक्ति को झूठा कहकर उससे जुडने के सेतु को ही मत तोड दो। सुधार से पहले जुडाव अनिवार्य है। सभी आत्मा में परमात्मा द्रष्टि रखें।**

4. मृत्यु महोत्सव

यदि इस पृथ्वी पर मृत्यु नहीं होती तो यहाँ धर्म भी नहीं होता। जिसे हम मृत्यु कहते हैं वह मृत्यु नहीं बल्कि मृत्यु की पूर्णता है। क्योंकि जन्म होते ही हम मृत्यु के मुख में प्रवेश करने की ओर गतिमान होते रहते हैं। जब कोई व्यक्ति हमें एक सिक्का देता है, तब उस सिक्के की एक बाजू के पीछे ही दूसरी बाजू भी हमें साथ में ही मिलती है। ऐसे ही जब हमें जीवन मिलता है, तब जीवन के पहले छोर में जन्म और दूसरे छोर पर मृत्यु साथ ही मिलती है। भले ही अज्ञानी के लिये मृत्यु दु:खद घटना हो, परन्तु ज्ञानी के लिये तो मृत्यु महोत्सव है। मृत्यु को साक्षी मान कर आत्मा की पर्याय आत्मा को वरमाला पहनाती है। **जाओ शमशान में! देखो जलते हुये मुर्दे को! विचार करो, बस हमारे देह के साथ भी यही हाल होने वाला है। नित्य की यात्रा का पहला पडाव यही है। एक मात्र मृत्यु ही क्षणिक के बोध की साक्षात् गवाह है।**

जो चीज बाहर से आती है, वह बाहर ही जाती है। बाहर जाती है, ऐसा नहीं, बल्कि न चाहते हुये भी बाहर लौटाना ही पडता है। हम धन इकठ्ठा करते हैं, रुपये बाहर से आते है, इसलिये बाहर लौटाने ही पडते हैं। हम भोजन करते हैं, अन्न बाहर से आता है, इसलिये मल के रुप में बाहर लौटाना ही पडता है। हम पानी पीते हैं, पानी बाहर से आता है, इसलिये मूत्र के रुप में बाहर लौटाना ही पडता है। हम साँस लेते हैं, हवा बाहर से आती है, इसलिये उच्छवास के रुप में बाहर लौटानी ही पडती है। यहाँ तक कि सद्गुरु से क्षयोपशम ज्ञान प्राप्त करते हैं, प्राप्त किया हुआ वह ज्ञान भी बाहर से आता है, इसलिये कुछ ही दिनों बाद हम उस ज्ञान को भी भूल जाते हैं। **एक मात्र चैतन्य स्वभावी भगवान आत्मा की निर्विकल्प अनुभूति अंतर से प्रकट होती है, अत: एक मात्र आत्मानुभूति ही आत्मा में अनंत काल तक टिककर रहती है। जगत में जो भी चीजें दी जाती है या ली जाती है, वे**

कदापि मूल्यवान नहीं हो सकती। एक मात्र चैतन्य तत्त्व की अनुभूति ही ऐसी है, जिसका आदान–प्रदान नहीं हो सकता।

जीव को जब यह श्रद्धा होती है कि जानना–जानना ही मेरा जीवन है और इस चैतन्यमयी नित्य जीवन के लिये एक परमाणु मात्र की भी आवश्यकता नहीं है। तब एक परमाणु को भी सुखबुद्धिपूर्वक बचाने का भाव नहीं रहता है। इस बोध को प्राप्त जीव धन, पद एवं प्रतिष्ठा आदि सब कुछ ही दाव पर लगा देता है। जिस जीव को एक मात्र चैतन्य स्वभाव की ही रुचि रहती है, उस जीव को निश्चित–रुप से निज चैतन्य परमात्मा की अनुभूति होती है और हाँ याद रहे, दाव पर भी उन्हें लगाना है, जो अपना है ही नहीं। अत: क्षणभर के लिये भी चिंतित होने की रंच मात्र आवश्यकता नहीं है। **स्वभाव की परिपूर्णता की जागृति के साथ जो देह छोडता है, वह मरता ही नहीं है। वह तो सदा के लिये अमर हो जाता है।**

हे चैतन्य परमात्मा! चैतन्य स्वभाव में मृत्यु का प्रवेश नहीं हो सकता है, इसलिये चैतन्य स्वभाव का आश्रय लेना ही मृत्यु से मुक्त होने का उपाय है। जब किसी व्यक्ति की मृत्यु होती है, तब दो मित्र मिलते हैं और कहते हैं कि बहुत अच्छा आदमी था, लेकिन गुजर गया। वे दोनों किसी तीसरे व्यक्ति की मृत्यु की चर्चा करके अपनी–अपनी मृत्यु के सम्बन्ध में विचार ही नहीं करना चाहते हैं। याद रहे, जो व्यक्ति मृत्यु को नहीं समझ सकता, वह धर्म को भी नहीं समझ सकता। प्रत्येक प्राणी की मृत्यु की घटना के समाचार स्वयं की मृत्यु का संकेत है। पैर के नीचे आकर चींटी मर गई, ऐसा देखते समय चींटी का नहीं, बल्कि भविष्य में होने वाला अपना मरण देख लेना चाहिए।

हे भव्य! जीवन में मरने के लक्ष्य से जीना और जीने के लक्ष्य से मरना। उक्त कथन का आशय यह है कि जागृति सहित जीवन जीना ही जीना है। जब घर में ताला लगाकर बाहर जाते हो, तब क्या यह याद आता है कि ताला खोलने के लिये वापिस नहीं आना हो सकता है? अपने घर आने से पहले ही पराये देह में जाना पड सकता है। जब सुबह वस्त्र पहनते हो, तब क्या यह याद आता है कि अब तो परिवारजन ही इस वस्त्र को

उतारेंगे। रात होने से पहले ही इस देहरुपी वस्त्र का त्याग करना पड सकता है। जब भोजन करते हो, तब क्या यह याद आता है कि मल के रुप में भोजन विसर्जित करने से पहले ही मृत्यु जीवन का भक्षण कर सकती है। जब पानी पीते हो, तब क्या याद आता है कि यह जीवन किसी भी क्षण पानी में बहकर समाप्त हो सकता है? जब साँस लेते हो, तब क्या याद आता है कि बस अन्तिम बार हवा शरीर से बाहर जा रही है, सारा जीवन यूं ही व्यर्थ में व्यतीत हो गया? इस शरीर ने तो अन्तिम हवा छोड दी, परन्तु हम अपने अहंकार की हवा को न छोड सके।

जैसे एक मुठ्ठी में थोड़ी मिट्टी लेकर चारों दिशाओं में थोड़ी–थोड़ी बिखेर दी। कुछ क्षण बाद यदि हम मिट्टी के उन्हीं परमाणु को दोबारा इकठ्ठा करना चाहे, तो कर ही नहीं सकते। ऐसे ही इस देह के परमाणु बिखरकर कहाँ–कहाँ चले जायेंगे, हमें पता भी नहीं चलेगा, जब तक इस देह के परमाणु की क्षणभंगुरता का बोध नहीं होगा, तब तक समयसारादि अनेक आगमों का ज्ञाता होने पर भी साक्षात् चैतन्य स्वरुप समयसार की नित्यता की यात्रा प्रारंभ नहीं होगी।

जिसने स्वयं को परिपूर्ण चैतन्य तत्त्व माना, उसका हाथ सुख पाने के लिये किसी भी परद्रव्य की ओर फैल ही नहीं सकता। मृत्यु होने पर आत्मा अपने साथ एक रुपया भी नहीं ले जाता, इससे आत्मा को कमजोर मत समझना। यह तो आत्मा की महानता है कि मैं भगवान आत्मा इतना परिपूर्ण हूँ कि उसमें अन्दर इतनी भी खाली जगह नहीं है कि मैं यहाँ से कुछ भी ले जा सकूँ। पूरी तरह पानी से भरे हुये गिलास में पानी भरने पर पानी जमीन पर गिर जायेगा। **जिसने स्वयं को परिपूर्ण माना है, उसे जगत में सभी आत्मा परिपूर्ण दिखाई देते हैं, कोई भी आत्मा पापी या दोषी दिखाई ही नहीं देता।**

ज्ञानी को यह जागृति है कि मैं चैतन्य तत्त्व हूँ। हे चैतन्य परमात्मा! जगत में कोई मेरा शत्रु नहीं है, कोई मेरा मित्र नहीं है, क्योंकि कोई मेरा है ही नहीं। भगवान! हमें कहीं भी व्यर्थ के विवाद में नहीं अटकना है। जब बच्चा गिरता है और रोता है, तब हम कहते हैं कि देखो! चींटी मर गई, तूझे कुछ

नहीं हुआ। वहाँ तो कोई चींटी नहीं मर गई, बाह्य में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ, बस बच्चे का उपयोग पलट गया। उपयोग पलटते ही वह बच्चा रोता बन्द हो जाता है। ऐसे ही ज्ञानी कहते हैं कि प्रतिसमय जागृति बनी रहे कि देखो! राग मर गया, परन्तु तू भगवान आत्मा त्रिकाल जीवित ही है। यहाँ तो सचमुच ही राग मर जाता है, पर्याय का व्यय हो जाता है।

जैसे किसी की मृत्यु हुई और किसी ने यह जाना कि मृत्यु से पहले क्या था? मृत्यु के समय क्या था? मृत्यु के पश्चात् क्या हुआ? वह जानने वाला, मरने वाले से तो जुदा ही होता है। ऐसे ही राग का विकल्प उत्पन्न हुआ, एक समय के लिये टिका और विकल्प का व्यय भी हो गया। जिसने ये जाना, वह भगवान आत्मा, राग से निश्चितरुप से जुदा ही है। मैं ही वह भगवान आत्मा हूँ।

मृत्यु की घटना से जीवन के सारे भ्रम छूट जाते हैं। याद रहे, जो किसी अन्य का होना चाहता है, वह स्वयं का नहीं हो सकता है। दुनिया लुट जाये तो लुट जाये, मैं चैतन्य तत्त्व हूँ। **जो जीव सदा जागृत रहता है, वही जीव मृत्यु की परीक्षा में सफल हो सकता है। मृत्यु जीवन की परीक्षा है। परीक्षा को सदा ही अंत में आना होता है। बस, इसलिये तो मृत्यु अंत में आती है।** कुछ छात्र ऐसे होते हैं, जो परीक्षाकक्ष में शिक्षक आ जाने पर भी किताब खोलकर पढ़ते रहते हैं, ये वे ही छात्र हैं, जिन्होंने साल भर किताब को हाथ भी नहीं लगाया था। मृत्यु की घड़ी में शास्त्र खोलकर मत बैठ जाना। वह घड़ी तो जीवनभर किये गये स्वाध्याय की परीक्षा की घड़ी है।

किसी मरणासन्न व्यक्ति को बुखार आया। जब उस व्यक्ति ने परिवारजनों से पूछा कि कितना बुखार है। परिवारजनों ने कहा 104 डिग्री। उसने कहा, बस तो ठीक है, बेच दो। जीवनभर शेयर–बाजार में बेचने और खरीदने के अतिरिक्त और कुछ न करने वाले व्यक्ति को मृत्यु की घड़ी में चैतन्य तत्त्व की जागृति कैसे रह सकती है? **हे चैतन्य प्रभु! बस आज से ही, अभी से ही जागृति रहे, पर्याय की मृत्यु होने पर भी मैं चैतन्य परमात्मा अमर रहता हूँ, ऐसी श्रद्धा के बल पर मृत्यु महोत्सव बन सकती है।**

5. महल है मिट्टी और देह है राख

जैसे समुद्र के किनारे बच्चे मिट्टी के मकान बनाकर खेलते हैं, पानी की एक लहर आते ही मिट्टी के मकान गिर जाते हैं। वैसे ही हमने भी मिट्टी के मकान बनाये हैं, भली ही हमारे मकान सिमेंट–कांक्रेट से बने हैं, तो क्या हुआ? आखिर वे भी है तो मिट्टी ही। फिर उन्हें महल नाम दो या मकान नाम दो या झोंपडी। विचार करो! क्या हमें कभी अपनी ये सभी हरकतें बचपनी लगती हैं? रुपया, मकान, शरीर ये धूल है, मिट्टी है, राख है, ऐसा सुनने मात्र से जिसके अहंकार को चोट पहुँचती हो, वह व्यक्ति कहाँ नित्य प्रत्यक्ष आत्मा का अनुभव करेगा?

ज्ञानी की द्रष्टि से जगत को देखने पर बडी–बडी इमारतें भी मिट्टी के ढ़ेर से अधिक मूल्यवान नहीं दिखती। धन के परमाणु धूल से अधिक मूल्यवान नहीं दिखते। देह के परमाणु राख के ढ़ेर से अधिक मूल्यवान नहीं दिखते। शरीर सदैव राख ही है, अज्ञानी जिन्दा शरीर को तो राख मानने के लिये तैयार नहीं होता, बल्कि मरने के बाद जलाये गये शरीर को भी राख नहीं मानता, मुर्दे की राख को अज्ञानी फूल कहता है, सत्य पर पर्दा डालता है, जो जिन्दा था तब फूल नहीं हो सका, वो मरने के बाद खाक फूल होगा!

ट्रेन में साथ बैठे यात्री की थैली में 1 किलो माँस है, यह जानकर हम चाहते हैं कि कब इससे छूटकारा हो। परन्तु माँस की थैली के पास बैठने से बचने की भावना भाने वाला परमात्मा 80 किलो के माँसादि मलिन पदार्थो के देहरुपी थैले में कैद है, इसका तो वह विचार ही नहीं करता है। देह की क्षणभंगुरता का बोध हो। दीर्घकाल तक साथ पाकर हमें कीचड़ भी अच्छा लगने लगता है। यह देह सचमुच ही कीचड़ है, परन्तु यह जानकर देह के प्रति द्वेष मत करना, बल्कि स्मरण रखना कि कीचड़ में ही कमल खिलता है। देह तो देवालय है, देह के प्रति घृणा न करे। बस देव और देवालय के बीच भेद की जागृति बनी रहे। काया की उपस्थिति में केवलज्ञान हो सकता है, परन्तु माया की उपस्थिति में नहीं।

जब पति पत्नी में से सुख लेना चाहता है, तब वह सोचता नहीं है कि पत्नी स्वयं दुःखी है और सुख पाने के लिये वह मुझे साधन बनाना चाहती है। दो दुःखी एक–दूसरे से सुख मांगते हैं। यह स्थिति ऐसी है जैसे दो भिखारी एक–दूसरे से भीख मांग रहे हो! शरीरादि संयोगो की अनित्यता का बोध हुये बिना अनेक शास्त्रों को कंठस्थ कर लेने पर भी कुछ प्राप्त नहीं होगा। भले ही जिनवाणी का एक वाक्य भी पढ़ा, परन्तु उस पर निरन्तर चिन्तन चलना चाहिए।

ज्ञानी को संसार की अनित्यता एवं असारता का ज्ञान होने पर दुःख नहीं होता, बल्कि खुशी होती है। वे कहते हैं कि धन्य है यह घड़ी! संसार का सत्य स्वरुप जान लिया। हमें भी जीवन में क्षणिक का बोध हो, ऐसे अवसर अनेकबार प्राप्त होते हैं। फिर भी हम भूतकाल के अनुभवों से कोई बोध नहीं लेते। बोध लेने की बात तो दूर, हम तो भूतकाल के शिक्षाप्रद अनुभवों को भी जान–बुझकर भूल जाना चाहते हैं। **ज्ञानी कहते हैं कि क्षणिक का प्रत्येक बोध एक–एक फूल है। ज्ञानी उन फूलों की माला बनाकर गले में पहनकर चलते हैं। जिनके गले में क्षणिक के बोध के फूलों की माला होगी, उनके गले में ही यह मंगलसूत्र रह सकता है।**

अज्ञानी के अनुभव के सामने आशा की जीत होती है, यही कारण है कि अज्ञानी अपना अमूल्य मानव–जीवन हार जाता है। हम इस आशा के साथ भारत से अमेरिका जाते हैं कि वहाँ शांति मिलेगी, परंतु अमेरिका पहुँचकर वहाँ हवाई–अड्डे पर देखते हैं कि लोगों की भीड़ सुख की आशा लेकर उसी विमान से भारत जाने का इंतझार करती है, जिस विमान में हम अमेरिका गये थे। दुनिया में ये सब लोग इधर–उधर दौड रहे हैं, वे सुख की आशा के पीछे ही तो दौड रहे हैं।

यदि तराजु के एक पलडे पर तीन लोक का वैभव रखें और दूसरे पलडे पर भगवान आत्मा। जिस व्यक्ति के तराजु का भगवान आत्मा वाला पलडा नीचे झुक जाये, उसे भी आत्मा की महिमा नहीं है। अहो! आत्मा की महिमा तो उसे है, जिसने आत्मा को ऐसा अतुल वैभव जाना, जिसे तीन लोक के वैभव के साथ भी कदापि नहीं तोला जा सकता।

6. जाना अनजाना हो जायेगा

कभी आपने अनुभव किया होगा कि आप कुर्सी पर बैठे हो और हाथ का रुमाल पैर के उपर रखा हो, जब रुमाल नीचे गिर जाता है, तब आपको पता भी नहीं चलता और कुछ सैकण्ड के लिये आप खोजते हैं और पाते हैं कि रुमाल जमीन पर गिरा हुआ है। उन कुछ सैकण्ड के लिये ज्ञान से, जाना रुमाल अनजाना हो जाता है, तब कैसी आकुलता होती है? जाना रुमाल अनजाना हो जाने से रुमाल का मोह नहीं छूट जाता। अब विचार करो! जब छोटा–सा रुमाल अनजाना हो जाता है, तब ऐसी व्याकुलता होती है, तो **मृत्यु होते ही अगले समय यह देह एवं देह के चेतन–अचेतन समस्त संयोग अनजाने हो जायेंगे, तब कैसी व्याकुलता होगी?** हे चैतन्य परमात्मा! इस देह के परिवर्तन होने से पहले ही क्षणिक संसार का बोध एवं नित्य चैतन्य तत्त्व की जागृति के बल पर समस्त परद्रव्य एवं परभाव अनजाने हो जाये अर्थात् **प्रत्येक ज्ञेय को जानने के काल में प्रतिसमय ज्ञान स्वभाव की जागृति रहे, यही साधक की साधना है, यही निराकुल होने का उपाय है।**

भूतकाल में जिस पदार्थ के नहीं मिल पाने के कारण जिस व्यक्ति ने आत्महत्या कर ली थी, उसी व्यक्ति को अगला जन्म लेने के बाद उसी पदार्थ के पास लाकर कहा जाये कि लो, ये ले लो, तो वह व्यक्ति उस वस्तु को पहिचानता भी नहीं है। एक क्षण में सब जाना अनजाना हो जाता है। इस घटना की गहराई को, क्षणभंगुरता की असारता को जिसने समझ लिया, उसी जीव की नित्यता की यात्रा प्रारम्भ हो सकती है।

जिन्दगी एक सपना है और मृत्यु है सपने का छूट जाना। सपना छूट जाने से पहले ही जो जाग जाता है, वही ज्ञानी है। जैसे किसी व्यक्ति ने सपने में देखा कि वह राजकुमार है, उसके पास बडा साम्राज्य है, वह राजकुमारी से शादी करने जा रहा है, सफेद घोडे पर बैठा है, परन्तु जैसे ही वह जागता

है, वह देखता है कि वह न तो कोई राजकुमार है, उसके पास न तो साम्राज्य है, न तो राजकुमारी है, न तो सफेद घोडा है। बस इसीप्रकार जीवन भर हम एक सपना देखते हैं कि यह मेरा शरीर है, यह मेरी पत्नी है, ये मेरे माता–पिता है, ये मेरे पुत्र–पुत्री है, ये मेरी धन–सम्पत्ति है। परन्तु मृत्यु होते ही अगले भव में जन्म लेते ही हम पाते हैं कि जिन्हें हम अपना मानते और कहते थे, उन संयोगो में से कुछ भी तो नहीं होता है। अत: याद रहे, जिन्दगी एक सपना है और मृत्यु है सपने का छूट जाना। सपना छूटने से पहले ही जाग जाने का आशय यह है कि **समस्त संयोग एवं संयोगीभावों की अनित्यता एवं असारता का बोध हो, प्रतिसमय परद्रव्य एवं परभाव को जानने के काल में भी, मैं चैतन्य स्वभावी भगवान आत्मा ही हूँ, ऐसी जागृति निरंतर बनी रहे।**

कभी हम मनुष्य होने का सपना देखते हैं तो कभी देव, कभी तिर्यंच या कभी नारकी होने का सपना देखते हैं। हमारे सपने बदलते हैं, परन्तु सपने छूटते नहीं है। **जागने पर ही सपना छूटता है।** अत: जागृति पर विशेष जोर दिया गया है। एक अभिनेता ने कहा कि मैंने अपने जीवन में इतने पात्र किये हैं कि आज मैं अपना असली नाम ही भूल गया हूँ। प्रत्येक अज्ञानी की स्थिति कुछ ऐसी ही है। चींटी, मक्खी, मच्छर, गाय, भैंस, कुत्ता, बिल्ली, मनुष्य, देव, नारकी के देह धारण करके जीव भूल ही गया है कि मैं चैतन्य परमात्मा हूँ। **प्रत्येक जीवन एक फिल्म है, प्रत्येक देह एक पात्र है। फिल्में बदलती हैं, पात्र बदलते हैं, परन्तु कहानी तो एक ही है।** हे जीव! आत्मजागृति ही इस परिभ्रमण से निवृत्त होने का एक मात्र उपाय है।

अभी यहाँ मनुष्य जीवन में भी कोई गृहस्थ होने का सपना देखता है, तो कोई गृहस्थावस्था का त्याग करके संन्यासी होने का सपना देखता है। कोई सपना छोटा होता है, तो कोई सपना लम्बा होता है। परन्तु सपना आखिर सपना ही होता है, फिर वह एक दिन का हो या अस्सी साल का हो। जब कोई व्यक्ति सपना देखता है, उस समय उसे वह सपना, सपना नहीं लगता है। वह सपना था, ऐसा बोध तो तब होता है, जब वह व्यक्ति जाग जाता है। **आत्मानुभूति होने पर ही अनित्यता असारता स्वप्न समान जानने में आती है।**

यदि किसी व्यक्ति का नौ बजे मरण होता है, तो नौ बजकर एक मिनट पर अगले भव में जाकर इस भव से सम्बन्धित कुछ भी याद नहीं रहता है। हे चैतन्य परमात्मा! जब नौ बजकर एक मिनट पर सब कुछ भूलना ही है, तो आठ बजकर उनसठ मिनट पर क्यों नहीं भूल जाता? आशय यह है कि संयोगो एवं संयोगीभावों के होने पर भी तू उनकी रुचि के अभाव से चैतन्य स्वरुपी निज परमात्मा में स्थिर क्यों नहीं होता?

प्रतिसमय यह जागृति रहे कि चमडे की आँखों से दिखाई देने वाला देह, परिवार, धन–सम्पति, आदि संयोग कर्मोदय का परिणाम है और कर्म का उदय चैतन्य परमात्मा को छूता भी नहीं है। यह जो जानने वाला तत्त्व विलसित हो रहा है, मैं वही हूँ, वही हूँ, वही हूँ।

विश्व प्रसिद्ध महान वैज्ञानिक जार्ज अल्बर्ट आइन्सटीन ने अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में जगत को यह संदेश दिया था कि कि मैं नहीं जानता कि मृत्यु के पश्चात् भी जीवन है या नहीं, किन्तु यदि यह सत्य है कि मृत्यु के पश्चात् भी जीवन है तो मैं अपने सपने को पूर्ण करना चाहूँगा। **मैंने विज्ञान के क्षेत्र में जगत के भौतिक पदार्थो के सम्बन्ध में अनेक संशोधन किये, बहुत खोज की, परन्तु आज यह एहसास हो रहा है कि इन सब को खोजने वाले की तो मैंने खोज ही नहीं की। अब, यदि दूबारा जीवन मिले, तो मैं सारे जगत को खोजने वाले को खोजना चाहूंगा।**

पलटू ने अपने जीवन में एक द्रश्य देखा कि फूलों के रस को चूसकर मधुमक्खियाँ छत्ता बना रही थी, छत्ता बनने में करीब छह महिने लग गये। जब छत्ता बन गया, तब मधु बेचने वाला व्यापारी छत्ते के नीचे धुआँ करता है, सभी मधुमक्खियों को छत्ते से उड जाना पडता है। हम सारे जीवन भर धन कमाते हैं और मकान बनाते हैं, मृत्यु आती है और बाहर में प्राप्त सब चेतन और अचेतन संयोगो को छीन लेती है। समाज में प्रतिष्ठा पाने के लिये हम सारा जीवन व्यर्थ में गंवाते हैं, मृत्यु होते ही समाज अनजाना हो जाता है। अनित्यता की असारता का जीवन में ऐसे घूल–मिल जाना और स्वयं की सत्ता का बोध होना ही स्वयं की साधना है। प्रतिसमय यह जागृति

रहे कि इस अनित्य संसार में मेरा कुछ भी नहीं है, मैं चैतन्य स्वभावी परमात्मा ही हूँ।

देवों में संयम नहीं होता क्योंकि देवों को मनुष्य की भाँति अनित्यता का बोध नहीं होता। देव और नारकी का कम से कम आयुष्य दश हजार वर्ष तो निश्चित ही है। मनुष्य जीवन में संयोगो की द्रष्टि से उतार एवं चढ़ाव होने से अनित्यता का बोध होने की सम्भावनायें सर्वाधिक पाई जाती है।

जो जीव निष्पक्ष होकर संसार की क्षणभंगुरता की असारता का और चैतन्य तत्त्व की नित्यता का विचार करता है, वह जीव निश्चितरुप से प्रत्येक पर्याय में मंगलसूत्र धारण करता है।

संयोगो की भांति रागादि भावों की अनित्यता का भी ऐसा बोध हो कि वे भाव कदापि एकरुप नहीं रहते। अब यदि पत्नी का प्रेम कम हो गया हो, तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। क्योंकि पेड़ की छाया सदा ही बदलती रहती है। सुबह के समय छाया बडी, दोपहर में छोटी और शाम के समय छाया बडी होती है। जैसे पेड़ की छाया कभी–भी एक–सी नहीं रहती है, वैसे ही किसी भी व्यक्ति का राग–द्वेष का भाव भी सदा एक–सा नहीं रहता है। खास बात तो यह है कि पेड़ जैसा पेड़ भी जब सूखकर नष्ट हो जाता है, तो पेड़ की छाया का तो कहना ही क्या? पत्नी भी जब मर जाती है, तो पत्नी के प्रेम का तो कहना ही क्या?

हे चैतन्य स्वभावी परमात्मा! अब तो एक क्षण भी पर के लिए व्यर्थ में गंवाने योग्य नहीं है। एक बार तो पर के लिए मर ही जाना चाहिए। आशय यह है कि मैं पर के लिए नहीं हूँ और पर मेरे लिए नहीं हैं, ऐसी प्रतीति हुए बिना चैतन्य स्वभाव की अनुभूति नहीं होती।

इस जगत में विषयभोगों के पीछे दौड लगाने वाले जीवों की ओर द्रष्टि भी मत करो, अरे! किसी भी परद्रव्य पर द्रष्टि करने योग्य नहीं है। एक मात्र निज चैतन्य के ही ज्ञान और ध्यान में लीन रहो फिर देखो! चैतन्य का चमत्कार होता है या नहीं? चैतन्य की अनुभूति होते ही जीव उस जगत में प्रवेश करता है, जिसका भूतकाल के जगत से कोई मिलान ही नहीं हो सकता।

7. यदि मान न होता तो

मनुष्य और धर्म के बीच अहंकार ही एक मात्र दीवार है। जैसे दीपक की ज्योति अंधकार को तो दूर कर सकती है, दीवार को नहीं। ऐसे ही सद्गुरु का उपदेश शिष्य के अज्ञानरूपी अंधकार को तो दूर करता है, अहंकाररूपी दीवार को नहीं। यदि मान न होता, यहीं मोक्ष होता। मिथ्यात्व ही मान का मूल है। देह का अहंकार छूटने पर ही विनय प्रकट होता है। आत्मा में अहंपना स्थापित हो, यही निजात्मा का विनय है।

यदि कोई देह का सम्मान या अपमान करता है, तो तुम्हें लगता है कि मैं बडा या छोटा हो गया। **अरे! सम्मान और अपमान के शब्द बहते पानी के प्रवाह जैसे हैं, शब्दों के बहते प्रवाह से मुझे क्या? मैं तो अनादि-अनन्त ध्रुव चैतन्य स्वभावी परिपूर्ण परमात्मा हूँ।** यदि कोई व्यक्ति आपको गंदे कपड़े पहनने को कहे, तो आप पहनते नहीं हो, तो किसी के द्वारा दिये गये गंदे शब्दों को क्यों ग्रहण कर लेते हो? यदि आप सम्मान पाना न चाहते हो, तो कोई भी व्यक्ति आपका अपमान नहीं कर सकता।

अनित्यता की असारता का बोध हो, तो पर्याय में तन्मयता रहेगी कैसे? क्षणिक के बोध के बल पर व्यक्ति मृत्यु को साथ लेकर ही जीता है। **राम नाम सत्य है, हम ऐसा दूसरों के लिये बोलते हैं ताकि हमारी मृत्यु के बाद दूसरे लोग भी हमारे लिये बोले। स्वयं ने स्वयं के लिये कभी नहीं बोला कि राम नाम सत्य है। कभी नहीं माना कि आतमराम ही सत्य है।** जिस जिन्दा व्यक्ति को हम गाली देते थे, उसके मरने के बाद हम दुःख जताते हैं, कहने लगते हैं कि वह प्रभु को प्यारा हो गया। कुछ समय पहले जो हमें भी प्यारा नहीं था, वह प्रभु को प्यारा हो गया। अज्ञानी को रास्ते पर अन्तिम यात्रा कर रहे अनजान मुर्दे को नमस्कार करने में भी कोई हर्ज नहीं है। क्योंकि वह मुर्दा उसके अहंकार को चोट नहीं पहुँचाता है।

हे भव्य! जन्म दूर जा रहा है और मरण निकट आ रहा है। चैतन्य स्वभाव न तो दूर जा रहा है और न ही निकट आ रहा है। मैं चैतन्य मात्र हूँ। चैतन्य तत्त्व के आश्रय से मानादि समस्त कषायों पर विजय पा सकते हो।

8. दमन से दुःख और संयम से सुख

जैसे फोड़े पर सुन्दर फूल रख देने से फोड़ा ढँक जाता है, परन्तु मिट नहीं जाता। फोड़े का उपचार करने से फोड़ा मिटता है। ऐसे ही मिथ्यात्व को बाह्य क्रियाकांडों से मिटाया नहीं जा सकता। विचार एवं ध्यान, रुप औषधि से मिथ्यात्व की बिमारी दूर होती है। **याद रहे, मिथ्यात्व सहित दमन से दुःख है और सम्यक्त्व सहित संयम से सुख है।**

जैसे साईकिल में पैड़ल मारना बन्द कर देने के बाद भी कुछ समय के लिये साईकिल चलती है। सम्यग्द्रष्टी ने नये पैड़ल मारना बन्द कर दिया है, परन्तु पूर्वकर्म के उदय से अभी ज्ञानी का संसार परिभ्रमण हो रहा है। पैड़ल मारना बन्द करने का अर्थ है सम्यग्दर्शन प्रकट होना और ब्रेक लगाने का अर्थ है मुनिदीक्षा अंगीकार करना। जो व्यक्ति पैड़ल मारना बन्द करने से पहले ही ब्रेक मार देता है, वह बेशक नीचे गिरता है। **हे चैतन्य परमात्मा! जो जीव सम्यग्दर्शन के साथ ही मुनिदीक्षा ग्रहण करते हैं, वे जीव संसार सागर से तिरते हैं।** हे भव्य! भूतकाल में सम्यग्दर्शन बिना अनन्त बार ली गई मुनिदीक्षा इस परम सत्य की गवाह है कि इस जीव ने बाह्य वस्त्र आदि कंचुली को ही छोडा था, मिथ्यात्वरुपी जहर को नहीं।

पंचेन्द्रिय जीव की संकल्पपूर्वक की गई हिंसा से भी बडा पाप मिथ्यात्व है। शुद्ध चैतन्य तत्त्व की अनुभूति होने पर ही मिथ्यात्व का नाश होता है। याद रहे, हमें कहीं से भागना नहीं है, कहीं पर भागना नहीं है। बस, हमें जागना है। यदि हजारों की भीड़ के बीच खड़े हो, तो भी स्वयं के अकेलेपन की जागृति बनी रहे। **मैं भगवान आत्मा अनन्त गुणों का घनपिंड हूँ, रागादि भावों की भीड़ से सदा ही न्यारा तत्त्व हूँ।** जागे बिना भागने पर भी जीवन में आध्यामिकता की सुगंध नहीं महक पाती है। भावलिंगी साधु का त्याग सच ही निराला एवं प्राकृतिक है। **चैतन्य तत्त्व पाने के बाद परिग्रह को ग्रहण करना कौन चाहेगा? हीरा मिलने पर कंकड–पत्थर को रखना कौन चाहेगा? इस कलिकाल में यहाँ भावलिंगी साधु के दर्शन तो अतिदुर्लभ ही है, द्रव्यलिंगी साधु के दर्शन भी दुर्लभ है।**

9. उदासीनता और निराशा

आत्मानुभूतिपूर्वक संसार से रुचि छूट जाना ही उदासीनता है। आत्मानुभूति के बिना संसार की अरुचि का आभास होना निराशा (डिप्रेशन) है। सर्वोत्कृष्ट पद, चैतन्य पद है। चैतन्य तत्त्व ही सर्वोच्च आसन है। **जिस जीव ने निज चैतन्य तत्त्व का आश्रय लिया है, वह जीव सर्वोच्च आसन पर आसीन होने उदासीन है।**

जो व्यक्ति कहता है कि भोग के पीछे भागते–भागते मुझे कुछ न मिला। ऐसा मानकर बैठ जाने वाला व्यक्ति निराश है। जिस व्यक्ति हृदय में यह भावना जगी है कि **भोग के पीछे भागते–भागते मुझे कुछ न मिला, बस मिला तो यह बोध मिला कि भोग के पीछे भागते–भागते कुछ नहीं मिलता।** अब इस बोध के बल पर जिसकी नित्यता की यात्रा प्रारम्भ हुई है, वह उदासीन है।ढ

आजकल आत्मा को पाने की दौड लगी है, फिर भी आत्मा मिलता नहीं है, तब जीव निराश हो जाता है। वह इस बात का विचार ही नहीं करता है कि **दौड़ना तो उस वस्तु की ओर होता है, जो वस्तु स्वयं से दूर हो! मैं चैतन्य स्वभावी भगवान आत्मा यहीं हूँ, यही हूँ।**

जैसे लोहा जब गरम होता है, तब वह सरलता से मोड लेता है। ऐसे ही जब क्षणिक का बोध होता है, तब जीवन में मोड आता है। जिस जीव के जीवन में क्षणिक का बोध होने से पहले ही चैतन्य तत्त्व के विचार से द्रढ आत्मिक संस्कार होते हैं, वे आत्मा के आश्रय से जगत के प्रति उदासीन होते हैं। जिस जीव के जीवन में क्षणिक का बोध होने से पहले चैतन्य तत्त्व के संस्कार नहीं होते हैं, वे निराश होकर बुरे व्यसनादि का सेवन करने लगते हैं।

ज्ञानी को जगत के किसी भी परद्रव्य से किंचित् मात्र भी सुख की आशा नहीं होती है। **आत्मिक अलौकिक सम्पदा पाने के बाद मिट्टी के ढ़ेर को पाना कौन चाहेगा?** जहाँ आशा होती है, वहाँ निराशा पाने की सम्भावना होती है। जहाँ पर से उम्मीद होती है, वहाँ धौखा होता है। उम्मीद से धौखा नहीं, बल्कि उम्मीद ही धौखा है।

10. विभाव में भी स्वभावरुप परिणमन

मैं चैतन्य स्वभावी भगवान आत्मा त्रिकाल निर्मल हूँ, क्योंकि निर्मल ज्ञान में ही देह की मलिनता जानने में आती है। यह तो आप जानते ही होंगे कि रंगीन वस्त्र की तुलना में सफेद वस्त्र अधिक मैला नहीं होता है। दोनों ही वस्त्र एक समान मैले होते हैं। हाँ, रंगीन वस्त्र की तुलना में सफेद वस्त्र पर लगा हुआ मैल अधिक स्पष्ट और सरलता से दिखाई देता है। सफेद वस्त्र पर दिखाई देने वाला स्पष्ट दाग वस्त्र के सफेद होने की गवाही दे रहा है। ऐसे ही ज्ञान की निर्मलता में जो रागादि भावों की मलिनता जानने में आती है, वह रागादि भावों की मलिनता के काल में भी ज्ञान की निर्मलता को सिद्ध करने वाली है। शुद्ध चैतन्य स्वभाव पर द्रष्टि जाते ही रागादि भाव सहज ही उत्पन्न नहीं होते। यदि ज्ञान अशुद्ध होता तो रागादिभावों की अशुद्धता जानने में ही नहीं आती। **जो जीव रागादि विभावों की अशुद्धता की ओर द्रष्टि करता है, वह स्वयं को अशुद्ध अनुभव करता है और जो जीव ज्ञान स्वभाव की शुद्धता की ओर द्रष्टि करता है, वह स्वयं को शुद्ध अनुभव करता है।**

जैसे दर्पण पर धूल जमने के कारण दर्पण में अन्य पदार्थ प्रतिबिम्बित नहीं होते हैं, परन्तु धूल तो प्रतिसमय प्रतिबिम्बित हो ही रही है। ऐसे ही रागादि भावों के आवरण में यद्यपि लोकालोक ज्ञान का ज्ञेय नहीं बन रहा है, परन्तु रागादि भाव तो ज्ञान में जानने में आ ही रहे हैं। **ज्ञान का जाननेरुप शुद्ध स्वभाव कदापि रागादिभावों की मलिनता से प्रभावित नहीं होता है।**

जैसे समुद्र की अनित्य लहरें दर्पण में स्पष्ट प्रतिबिम्बित होती है, वे दर्पण की स्थिरता को सिद्ध करती है। यदि लहरों की तरह दर्पण भी अस्थिर होता, तो वे लहरें दर्पण में स्पष्ट प्रतिबिम्बित नहीं होती। वहाँ जिन्हें दर्पण की रुचि है, उन्हें दर्पण की निर्मलता और जिन्हें समुद्र की लहरों की रुचि है, उन्हें लहरें दिखाई देती है। ऐसे ही ज्ञानी को प्रतिसमय ज्ञान की और अज्ञानी को प्रतिसमय परज्ञेय की ओर द्रष्टि होती है।

श्रद्धा और चारित्र गुण की अशुद्ध पर्याय अर्थात् मोह, राग एवं द्वेष के भाव भी ज्ञान गुण की पर्याय में ऐसे ही जानने में आते हैं, जैसे जगत के अन्य पदार्थ जानने में आते हैं। अत: मोह, राग एवं द्वेष के भाव ज्ञान की पर्याय में जानने में आने पर भी ज्ञान को मलिन नहीं करते। ज्ञान सदा ही निर्मल है। ज्ञान का जानने–जानने रुप परिणमन सहज है। इसे परज्ञेय की और इन्द्रियों की किंचित् भी अपेक्षा नहीं है। इन्द्रियों के कारण या ज्ञेय की सत्ता के कारण या ज्ञानावरण के क्षयोपशम के कारण ज्ञान का जानने–जाननेरुप परिणमन नहीं हो रहा है।

जैसे नल में से आता हुआ पानी नल में से नहीं आया, बल्कि पानी के तालाब में से पानी आया है। पानी में से पानी आया है। ऐसे ही इन्द्रियों से ज्ञान नहीं होता है, **अंतरंग में ज्ञान का सागर भगवान आत्मा विद्यमान है, ज्ञान से ज्ञान होता है।** मुझे पर से ज्ञान होता है, ऐसी श्रद्धा सम्बन्धी कमजोरी से मुक्ति मिले बिना क्षयोपशमज्ञान और देह से मुक्ति कैसे मिल सकती है? सम्यग्दर्शन के बिना केवलज्ञान और मोक्ष कैसे प्रकट हो सकता है? आत्मा के ज्ञान का सहज स्वभाव है कि वह निरंतर जानने–जाननेरुप परिणमित हो और इस परिणमन हेतु ज्ञान को किसी पर की अपेक्षा या परतंत्रता या पराधीनता नहीं है। यही तो कारण है कि ज्ञान आत्मा का स्वभाव है और रागादि भाव आत्मा के विभाव है।

जैसे – सामने कुर्सी नामक परज्ञेय है। ज्ञान की पर्याय ने मात्र जाना कि यह कुर्सी है। श्रद्धा की पर्याय ने यह माना कि यह कुर्सी मेरी है। चारित्र की पर्याय की परिणति ऐसी हुई कि यह कुर्सी अच्छी है। श्रद्धा और चारित्र गुण की पर्यायें भी ज्ञान में सहजरुप से जानने में आती हैं। समझने योग्य बात यह है कि ज्ञान, श्रद्धान और चारित्र इन तीनों गुणों की पर्यायों का विषय कुर्सी होने पर भी ज्ञान को स्वभाव और श्रद्धा एवं चारित्र की मोह एवं राग की पर्यायों को परभाव क्यों कहा? रागादि भावों की उत्पत्ति में परद्रव्य निमित्त है और निमित्त अकिंचित्कर है, फिर रागादि भावों को परभाव क्यों कहा?

मोह, राग और द्वेष के भावों की उत्पत्ति के काल में परद्रव्य का निमित्त होना अनिवार्य है, परन्तु जानने–जानने रुप परिणमन के लिये परद्रव्य का निमित्तपना अनिवार्य नहीं है। यदि परद्रव्य का निमित्त नहीं होगा, तो मोह, राग और द्वेष के भाव निज आत्मा के लक्ष्य से उत्पन्न नहीं हो सकते। विकारी भावों को उत्पन्न होने के लिये परद्रव्य की अपेक्षा अनिवार्य है। **यदि ज्ञान की पर्याय में परद्रव्य जानने में नहीं भी आया, तो ज्ञान का जानने रुप परिणमन रुक नहीं जायेगा। ज्ञान में निज शुद्धात्मा जानने में आयेगा।**

राग–द्वेष के भाव आत्मा में उत्पन्न होने पर भी वे भाव आत्मा का स्वभाव नहीं है। यहाँ प्रश्न होना स्वाभाविक है कि जब जगत में सभी द्रव्य अपने–अपने द्रव्य स्वभाव के अनुरुप ही परिणमित होते हैं, तो इन्हें विभाव क्यों कहते हैं? ज्ञानी कहते हैं कि विभावरुप परिणमन भी स्वभावरुप परिणमन है। जीव में वैभाविक नामक गुण है। जब जीव परद्रव्य की ओर लक्ष्य करता है, तब पर्याय में विभावरुप परिणमन हो, ऐसा जीव का पर्याय स्वभाव है। अत: स्वभावरुप परिणमन का भाव गहराई से समझना चाहिए।

गहराई से विचार करे तो गुणों के विभावरुप परिणमन में भी स्वभावरुप परिणमन ही होता है। जैसा कि – ज्ञान में जो ज्ञेय जानने में आता है, ज्ञान में अपनी योग्यता से ज्ञेय जैसा ज्ञानाकाररुप परिणमन होता है। वह परिणमन जानने–जाननेरुप होता है।

जैसे साँप को देखकर बच्चे ने आटे का साँप बनाया, तो वहाँ साँप का परिणमन नहीं है, बल्कि आटे का ही परिणमन है। ऐसे ही राग का भाव आत्मा के चारित्र गुण का चारित्ररुप ही परिणमन है। अर्थात् चारित्र गुण का चारित्ररुप परिणमन स्वभावरुप ही परिणमन है। इसी परिणमन को जब विशेषरुप से देखते हैं, तब राग–द्वेषादि के रुप में देखा, तब यह परिणमन विभावरुप कहा जाता है। जैसे पानी का गर्म होना स्पर्श गुण का ही स्वाभाविक परिणमन है। पानी शीतल हो या उष्ण हो, दोनों ही स्पर्श गुण की अवस्था है। परन्तु अग्नि का निमित्त होने से उसे विभावरुप परिणमन कहा। ऐसे ही रागादि भावों में परद्रव्य का निमित्त, परद्रव्य का लक्ष्य होने से उन्हें विभावभाव कहते हैं। परन्तु याद रहे, वे भाव जीव के चारित्र गुण का

परिणमन हैं, पर का परिणमन नहीं है। विभाव पर्याय में भी स्वभाव देखने पर यथार्थ दिशा में पुरुषार्थ प्रारम्भ होता है।

ऐसे ही श्रद्धा गुण का भी एकत्वरुप परिणमन निरंतर हो रहा है। अपना माननेरुप परिणमन एक समय के लिये भी रुका नहीं है। मिथ्यात्व पर्याय में भी स्वभावरुप परिणमन देखने पर श्रद्धा ही परिणमित होती जानने में आती है। यह मेरा है, यह मेरा है, इस प्रकार से श्रद्धा चारों ओर फैली हुई है। जैसे सूर्य की फैली हुई किरणों को बिलोरी कांच के माध्यम से कागज पर केन्द्रित करे, तो कागज जल जाता है। ऐसे ही शरीर, पुत्र, पत्नी, धन, सम्पति आदि संयोगो एवं संयोगीभावों में एकत्व करने वाली श्रद्धा गुण की पर्याय वहाँ से सिमटकर एक मात्र त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा में एकत्व करती है, तब मिथ्यात्व कर्म सहज ही जल जाता है।

अज्ञानी को वर्तमान में दु:ख की पर्याय है। परन्तु दु:खरुप परिणमन भी सुख गुण का ही परिणमन है। आत्मा के सुख का अपने गुणरुप ही परिणमन है। जिस सुख गुण का वर्तमान परिणमन दु:ख है, उसी सुख गुण का परिणमन आह्लाद स्वरुप सुख होता है। यदि एक द्रव्य भी अपने स्वभाव को छोडकर परिणमित हो, विश्व की व्यवस्था ही अव्यवस्थित हो जायेगी। परन्तु ऐसा हो ही नहीं सकता।

अत: परिणमन मात्र की ओर द्रष्टि करने पर श्रद्धा, चारित्र एवं सुख आदि गुण भी ज्ञान के स्वभावरुप परिणमन की तरह अपने–अपने स्वभावरुप ही परिणमित हो रहे हैं। एक गुण का भी परिणमन, अन्य गुण रुप नहीं होता है। यही स्वभावरुप परिणमन है। सारा जगत यथायोग्य स्वभावरुप ही परिणमित हो रहा है। प्रतिसमय जागृति रहे कि **रागादि भावरुप विकल्पों की तरंगो के काल में भी मैं चैतन्य स्वभावी भगवान आत्मा एक समय के लिये भी रागादि भावों में मिला नहीं हूँ। त्रिकाल शुद्ध चैतन्य मात्र हूँ।**

हे अनन्त गुणाधिपति चैतन्य परमात्मा! किसी भी अवस्था में स्वयं को हीन मत मान। द्रव्यद्रष्टि का जोर इतना हो, कि एक समय के लिये भी पर्याय द्रष्टि में न आये। बस इसलिये कहा है, **द्रव्यद्रष्टि सो सम्यग्द्रष्टि, पर्यायद्रष्टि सो मिथ्याद्रष्टि।**

11. ग्यारहवीं चैतन्य दिशा

धर्म एक यात्रा है, शेष कोई भी यात्रा नहीं है। क्योंकि यात्रा उसे ही कहते हैं, जो कहीं पहुँचाती हो। संसार में जिसे यात्रा मानी जाती है, वह तो सिर्फ भटकाती ही है। ज्ञान ही तीर्थ है, चैतन्य की यात्रा जीव को अज्ञान से ज्ञान तक, राग से वीतराग तक, दुःख से सुख तक एवं संसार से मोक्ष तक पहुँचाती है।

अज्ञानी जनों को लोक की दश दिशाओं का ज्ञान तो है, परन्तु अलौकिक ग्यारहवीं चैतन्य दिशा का उन्हें कोई बोध नहीं। वे इस ग्यारहवीं दिशा को ही नहीं जानते, जिस दिशा की ओर यात्रा करने वाले ज्ञानियों की दशों दिशाओं में कान्ति फैलती है। अनादि से ग्यारहवीं एक मात्र सत् चैतन्य दिशा की ओर गति न होना ही दुर्गति का कारण बना है। **असत्य के पैर नहीं होते, इसलिये असत्य बहुत दूर तक नहीं चल सकता। सत् चैतन्य की अपेक्षा, पर्याय असत् होने से वह एक समय से अधिक टिकती नहीं है।**

अनेक लोग अनेक देशों की यात्रा करते हैं, पर क्या कभी यह विचार भी आता है कि परदेश कभी स्वदेश में नहीं आ सकता, परन्तु परदेश जाने वाला स्वदेशी स्वदेश में आ सकता है। परभाव कभी स्वभाव में नहीं आ सकता, परन्तु परभाव में एकत्व करने वाली आत्मा की श्रद्धा स्वभाव में एकत्व कर सकती है। **स्वभाव में स्थिर होना ही धर्म का मर्म है।**

लौकिक यात्रा के दौरान हमें कई बार ऐसा अनुभव होता है कि हम कहाँ जाने के लिये निकलते हैं और कहाँ पहुँच जाते हैं? जाने के लिये निकलने का विकल्प होता है कुछ, और पहुँचने की भवितव्यता होती है कुछ। प्रत्येक लौकिक यात्रा के दौरान जागृति रहे कि जाने के विकल्पों और पहुँचने की भवितव्यता से न्यारा त्रिकाल एक शुद्ध चैतन्य तत्त्व है, वही मैं हूँ और कुछ भी नहीं। ज्ञानी की यात्रा निराली होती है। **ज्ञानी के पदचिन्ह नहीं होते क्योंकि ज्ञानी मुक्तमन से आकाश में विचरण करते हैं।** बस, इसलिये ही ज्ञानी की नकल नहीं की जा सकती। हे चैतन्य परमात्मा! स्वद्रव्य में परिपूर्णता का अनुभव करना ही ग्यारहवीं दिशा की यात्रा है।

12. साधना विधि

जैसे कोई व्यक्ति अभी भारत में है, परन्तु सपने में परदेश में घूम रहा है। अब उस व्यक्ति को अपने देश में वापिस आने की विधि क्या है? क्या उसे परदेश से स्वदेश में आने के लिये पासपोर्ट और टिकट की आवश्यकता है? अरे! जागना ही भारत पहुँचना है, पहुँचना भी क्यों? वह भारत में ही है। मात्र कल्पना से स्वयं को परदेश में माना था। ऐसे ही आत्मा मिथ्यात्व की नींद में सोता हुआ चित्र-विचित्र कल्पनाओं के सपने देखता है। शरीरादि संयोग एवं रागादि संयोगीभावों को अपना मान रहा है, जब उसे अनुभव होता है कि मैं शुद्ध चैतन्य मात्र हूँ, तब वह जाग जाता है। **जागे को सदा सुबह है, सोते को सदा रात है। ज्ञानी को सदा ज्ञान में और अज्ञानी को सदा राग में एकत्व होता है।**

अधिकांश लोग साधना को एक कमरे में हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाने को साधना की विधि मानते हैं। हे चैतन्य! प्रतिसमय प्रत्येक क्रिया में अंतरंग में स्व-पर के भेदविज्ञान का प्रयोग चलता रहे, यही साधना है। **आत्मजागृति ही आध्यात्मिक साधना है।** तत्त्वविचार के काल में, मैं चैतन्य स्वभावी भगवान आत्मा हूँ, ऐसे विकल्पों की बात तो बहुत दूर, पूर्ण निर्विकल्प आत्मानुभूति स्वरुप केवलज्ञान की भी रुचि न हो और एक मात्र ज्ञायक की रुचि हो, तब आत्मानुभूति प्रकट होती है।

हम व्यर्थ के विषयो के विकल्पों में ऐसे ही उलझते रहते हैं, जिनसे हमारा कोई लेना-देना ही नहीं होता। यही कारण है कि चैतन्य की चर्चा सुनकर भी अंतरंग में परिणमन नहीं हो पाता। क्योंकि सुनकर भी सुनने का प्रयोजन एवं भाव नहीं समझा अत: द्रष्टि बाहर में ही अटक गई। हम आपकी आदत को दूर करना नहीं चाहते। हम आपकी दोष देखने की आदत को छुडाना नहीं चाहते। बस, अपनी आदत को परिवर्तित कर दें। दूसरे के दोष देखने की आदत को बदलकर अपने दोष देखने लगे।

एक व्यक्ति को पाप करता हुआ देखकर दूसरा व्यक्ति कहता है कि देखो! यह इस पापी को, कैसा पाप कर रहा है? तब तीसरा व्यक्ति कि जिसने मात्र शास्त्र पढ़ रखे हैं, वह कहेगा कि अरे! जिसका संसार सागर का किनारा अभी दूर है, वह तो ऐसे पाप करेगा ही करेगा। इसमें आश्चर्य की बात क्या है? ज्ञानी कहते हैं कि अरे! जिन्होंने संसार सागर को पार कर लिया है, ऐसे वीतरागी एवं सर्वज्ञ भगवान की ओर द्रष्टि करने से भी हमें आत्मानुभूति प्रकट नहीं होती, तो जिनका किनारा अभी दूर है, ऐसे जीवों से हमें क्या प्रयोजन है? अत: हे जीव! अनादिकालीन पर की रुचि के कारण चित्त तो सदा ही पर के प्रपंच में रुचि लेना चाहेगा। परन्तु छोड दो व्यर्थ के विवाद को, हमें तो पर में उलझना ही नहीं है, ऐसे द्रढ निश्चयपूर्वक चैतन्य के चिन्तन की धारा बहती रहे, यही साधक की साधना है।

याद रहे, राग या द्वेष के भाव उन्हीं पदार्थो में उत्पन्न होते हैं, जिन पदार्थो का हमें ज्ञान होता है। इसका अर्थ ऐसा मत समझना कि ज्ञान के कारण राग–द्वेष होता है। यदि ज्ञान के कारण राग–द्वेष होते, तो सर्वज्ञ भगवान को सर्वाधिक राग–द्वेष होते। उक्त कथन का आशय यह है कि वर्तमान में पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण साधना में अप्रयोजनभूत विषयों से बचने का उपदेश दिया है। श्रीमद राजचन्द्र जी ने वचनामृत पत्रांक 103 में लिखा है कि **एकांत से जितना संसारक्षय होगा, उसका सौंवाँ हिस्सा भी उस काजलगृह में रहकर नहीं होगा।** जब तक जीव की द्रष्टि निमित्ताधीन है, तब तक सद्निमित्तों में रहना जीव का कर्तव्य है।

निमित्त को अकर्ता मानने वाले और तीन कषाय चौकडी के अभावपूर्वक सकलचारित्ररुप वीतरागता को प्राप्त मुनिराज भी जानते हैं कि चार पैर वाले पशु की तुलना में दो पैर वाला पशु अधिक खतरनाक है। यही कारण है कि वे गृहस्थों की संगति से अत्यंत दूर वन में आत्मसाधना करते हैं। हे चैतन्य परमात्मा! सदा ही बचना उन निमित्तो से, जहाँ चैतन्य परमात्मा की चर्चा–वार्ता न होती हो।

जब दुकानदार दुकान पर जाता है, तब वह अपनी पत्नी और बच्चों को साथ लेकर नहीं जाता है। यद्यपि दुकानदार को उनके प्रति द्वेष नहीं है,

फिर भी वह जानता है कि दुकान पर उनकी उपस्थिति के कारण व्यापार करने में बाधा पहुँच सकती है। अत: हे साधक! अंतर परिणति की निर्मलता की कमाई के लिये असद्निमित्तों से बचकर सद्निमित्तों में रहना। एकांत से निश्चय नय से कहे गये सिद्धांत को बोलकर स्वच्छंदता का पोषण करके अपना संसार परिभ्रमण मत बढ़ाना। निमित्त कुछ करता नहीं है, यह श्रद्धा में मानने योग्य है, सिर्फ वाणी में बोलकर इस भूमिका में सद्निमित्तों का अवलंबन छोडकर स्वच्छंदी होने के लिये नहीं। **निश्चयाभास के कारण जीव सत्संग का योग छोडकर अशुभ भावों में प्रवर्तन करता है, इसलिये उसे उस स्थिति से सीधा आत्मानुभूति तक पहुँचना असम्भव हो जाता है।**

अज्ञानी को रागादि भाव उत्पन्न हो रहे हैं, उनके एकत्व से मिथ्यात्व पुष्ट हो रहा है, उसका तो उसे कोई विचार ही नहीं आता। बस, रागादि मेरे नहीं है, ऐसा वाणी में बोलता रहता है। अन्यमती क्या करते हैं और क्या कहते हैं? ये जानने की रुचि छूटी नहीं है। हे जीव! जब तूझे तेरी पर्याय से भी कोई लेना–देना नहीं है, तो परद्रव्य की पर्याय में व्यर्थ में क्यों उलझ रहा है? अपने परिणामों का विचार कर! **अहंकार के वशीभूत होकर व्यक्ति दूसरों के दोषों को देखने के लिये तो न्यायाधीश बनता है और स्वयं के दोषों को ढांकने के लिये वकील बनता है।**

कौन क्या करता है? उससे हमें क्या? हमें तो अपना प्रयोजन सिद्ध करना है। जब समयसारादि शास्त्रों को पढ़कर कहते हैं कि पर्याय को भी पाताल में डालो, समुद्र में डालो, खाई में डालो, ऐसे भेदज्ञानी को श्वेतांबर और दिगंबर के भेद से क्या? जैन और अजैन के भेद से क्या?

हे साधक! वीतरागी एवं सर्वज्ञ भगवान प्ररुपित धर्म का अपने जीवन में प्रयोग करने से ही भगवान का आदर होता है। परमात्मा को मस्तक झुकाने मात्र से परमात्मा का आदर नहीं हो जाता। याद रहे, महावीर भगवान को उनसे पूर्व होने वाले 23 तीर्थंकरों के सामने घूटने टेककर परमात्मपद प्रकट नहीं हुआ था। ज्ञायक में स्थिरतारुप जो स्वतंत्र एवं स्वाधीन यह महान कार्य है, अज्ञानी को उसी कार्य से सबसे अधिक भय लगता है। जिस आत्मा ने स्वयं की शरण ली, उसे कहीं अन्य की शरण लेने नहीं जाना पडता।

13. मैं कौन हूँ और कहाँ हूँ?

जैसे धन के अहंकार में लवलीन बेटे पूछते हैं कि तुझे पता है मेरे पिताजी कौन है? तन के अहंभाव में लवलीन अज्ञानी जीवों को यह प्रश्न उत्पन्न होना स्वाभाविक है मैं कौन हूँ?

जैसे दीपक में से प्रकाश और धुआँ दोनों ही उत्पन्न होते हैं, परन्तु दीपक का स्वभाव प्रकाश है, धुआँ नहीं। धुआँ तो दीपक का मैल है। जैसे दीपक जगत के पदार्थो को प्रकाशित करता है, ऐसे ही धुएँ को भी प्रकाशित करता है। अरे! प्रकाशित करता क्या है? धुआँ एवं अन्य पदार्थ सहज ही प्रकाशित होते हैं। ऐसे ही आत्मा में से ज्ञान और राग दोनों ही उत्पन्न होते हैं, परन्तु आत्मा का स्वभाव ज्ञान है, राग नहीं। राग तो आत्मा का मैल है, विकार है। जैसे आत्मा जगत के पदार्थो को प्रकाशित करता है, ऐसे ही राग को भी प्रकाशित करता है। अरे! प्रकाशित करता क्या है? राग एवं अन्य पदार्थ सहज ही प्रकाशित होते हैं। जैसे प्रकाश के अभाव में अकेला धुआँ हमें दिखाई नहीं दे सकता हैं। ऐसे ही ज्ञान के अभाव में राग जानने में आयेगा किसे?

जैसे दीपक से प्रकाशित होने वाले पदार्थ से दीपक दूर चला जाये, तो भी दीपक बुझ नहीं जाता। क्योंकि दीपक की ज्योति की सत्ता स्वयं से है। ऐसे ही वर्तमान में जानने में आने वाला यह शरीर राख हो जाये और जानने में न आये, तो ज्ञानज्योति बुझ नहीं जाती है। **ज्ञान की सत्ता स्वयं से है, मैं चैतन्य स्वभावी सत्ता स्वरुप द्रव्य हूँ। मेरी सत्ता स्वयं से है। मैं चैतन्य प्रदेश के बाहर कहीं भी नहीं हूँ।**

द्रव्य स्वभाव का जोर द्रष्टि में ऐसा बना रहे कि तीन लोक की जनसंख्या सिर्फ एक है। ज्ञानी मानते हैं कि जब ये विकल्परुप भावकर्म ही मेरा स्वरुप नहीं है, तब विकल्पों के कारण होने वाला द्रव्य कर्मो की बंध एवं उदय आदि अवस्था मेरी कैसे हो सकती है? कर्मो के उदय से प्राप्त होने वाले शरीर, धन–सम्पति आदि अचेतन एवं पत्नी–पुत्र आदि चेतन संयोगरुप नोकर्म मेरे कैसे हो सकते हैं?

14. चैतन्य का चिन्तन

जैसे कुआँ पानी दे सकता है, परन्तु प्यास नहीं, ऐसे ही सद्गुरु आत्मानुभूति का स्वरुप समझाते हैं, परन्तु आत्मानुभूति की जिज्ञासा नहीं जगा सकते। सारे जगत में सर्वत्र ऐसी दयनीय स्थिति है कि बच्चा प्रश्न पूछे, उससे पहले ही बच्चे को माता–पिता, गुरुजन और समाज के द्वारा यह उत्तर मिल जाता है कि सच्चे भगवान कौन है? बिना प्रश्न के उत्तर का बोझ लेकर बच्चा जीवनभर धर्म का पालन करता है। परिणाम यह आता है कि वह स्वतंत्ररुप से सत्य–असत्य का विचार ही नहीं कर पाता। उसके जीवन में आध्यात्मिक क्रान्ति घटित ही नहीं हो पाती। आत्मजागृति की ज्योति प्रकट नहीं हो पाती। आत्मानुभूति का रस पान नहीं हो पाता।

जैसे दूसरों की सम्पत्ति गिनने मात्र से कोई समृद्ध नहीं हो जाता, ऐसे ही ज्ञानी द्वारा रचित शास्त्रों के शब्दों को गुनगुनाने मात्र से कोई ज्ञानी नहीं हो जाता। जो जीव स्वयं निज शुद्धात्मा का चिन्तन करना है, वही आत्मानुभूति को उपलब्ध होता है।

करोड़ो भवों की व्रत, शील एवं तपश्चर्या आदि से जो पुण्यबंध होता है, उससे भी उत्कृष्ट पुण्य एक समय के चैतन्य के चिन्तन से बंधता है। क्योंकि सम्यक् दिशा की ओर मंदगति से भी यात्रा हो तो जीव निश्चितरुप से ध्येय को उपलब्ध होता है। यहाँ चैतन्य तत्त्व के चिन्तन मात्र से पुण्यबंध कहा है, अनुभव से नहीं। **अहो! आत्मानुभव होने पर परिणति की निर्मलता के बल पर समस्त पाप एवं पुण्य की निर्जरा होती है, कर्मो का बंधन नहीं।**

आज तक अनेक बार सत्संग का योग मिलने पर भी हमारी पर्याय ने सतास्वरुप द्रव्य का संग क्यों नहीं किया? जब हम सत्संग के योग में प्रवचन सुनते हैं, तब मोक्षरुपी महल का निर्माण करने के लिये दाये हाथ से एक इंट रखते हैं, परन्तु बाहर निकलते ही बाये हाथ से वह इंट उठा लेते हैं। परिणाम स्वरुप मोक्षमहल की नींव का भी निर्माण नहीं हो पाता। **चैतन्य चिन्तन की प्रवाहरुप धारा के अभाव में सम्यग्दर्शन भी प्रकट नहीं हो पाता।**

अनुभव आत्मा का लक्षण है, अत: अनुभव को वाणी से व्यक्त नहीं किया जा सकता। फिर भी ज्ञानी को करुणापूर्वक उपदेश देने के विकल्प उत्पन्न होते हैं। जो भगवान आत्मा अनुभव में आता है, वह तो परिपूर्ण अनुभव में आता है। फिर भी उस परिपूर्ण आत्मा में कुछ गुण ऐसे है, जो वचनगोचर है और कुछ गुण वचनअगोचर है। इसलिये शास्त्रों में वचनगोचर गुणों के माध्यम से वचनगोचर एवं वचनअगोचर गुणों के समूहरुप भगवान आत्मा की अनुभूति की प्रेरणा दी है। वचनगोचर गुणों का यथार्थ स्वरुप जानकर द्रव्य का सर्वांग स्वरुप समझने के लिये शुद्धात्म द्रव्य का चिन्तन ही एक मात्र उपाय है।

एक समय के लिये भी परद्रव्य के आधीन होने की आवश्यकता नहीं है। कुछ लोग पूछते हैं कि गुस्सा आये तब क्या करना चाहिए? क्रोधित व्यक्ति को तत्त्व का उपदेश देने पर वह उपदेश परिणमित नहीं होता है। क्योंकि जहाँ कषायों की मंदता होती है, विशुद्धि होती है, वहाँ देशना होती है। **जब कषाय मंद हो, तब मंद कषाय का लाभ उठाकर मंगलसूत्र स्वभावी चैतन्य तत्त्व के चिन्तन के बल पर ऐसी द्रढता और निर्णय हो कि भविष्य में कोई भी कषाय भाव उत्पन्न हो, वह भाव लम्बे समय के लिये टिके ही नहीं।** प्राथमिक भूमिका में ऐसी स्थिति पाकर निराश मत होना। बच्चा जब चलना सीखता है, तब अनेक बार नीचे गिरता है। तत्त्वविचार के फल स्वरुप प्रारम्भ में कषाय का रस मंद होने लगता है। तत्त्वविचार से अंतरंग में जो कार्य चलता है, वह बाहर दिखाई नहीं देता।

जैसे किसी पत्थर पर सौ बार हथौडे मारने पर वह पत्थर टूटता है। निन्यानवें बार हथौडे मारने पर नहीं टूटा, इसलिये निन्यानवें बार मारे गये हथौडे निष्फल गये, ऐसा नहीं है। पत्थर के अन्दर टूटने का कार्य चल ही रहा था। सौवें हथौडे में हमें फल दिखाई देता है। ऐसे ही **तत्त्वविचार के फल में एक समय में सम्यग्दर्शन प्रकट होता है, परन्तु उस समय से पहले असंख्य समयों तक चैतन्य का चिन्तन चला था, वह भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में कारणभूत है।** इस भूमिका में बस, निरंतर तत्त्वविचार, चैतन्य तत्त्व की जागृति और आत्मनिरीक्षण बना रहे।

15. भाव से भीगने का भाव

जैसे शब्दों के भाव न समझने के कारण माँ के द्वारा सुनाये जा रहे शब्दों को सुनकर झूले में लेटे हुये बेटे में उब पैदा होती है। माँ कहती है कि मेरा राजा बेटा, सो जा बेटा, मेरा राजा बेटा, सो जा बेटा। इन शब्दों को सुनकर बेटा थक जाता है, वह कहीं चला जाना चाहता है। परन्तु शरीर में इतनी शक्ति नहीं है कि कहीं चला जाये। बस, इतना कर सकता है कि वह बच्चा नींद में चला जाता है। माँ भ्रम से ऐसा समझती है कि मैंने इतना अच्छा गाया कि बच्चा सो गया। ऐसे ही चैतन्य परमात्मा, चैतन्य परमात्मा, चैतन्य परमात्मा... इन शब्दों के भाव नहीं समझ में आये तो, बार–बार एक ही शब्दों के पुनरावर्तन से उब पैदा होती है। कभी–कभी भगवान आत्मा की पुकार हो रही हो, ऐसे प्रवचनों में भी लोग सो जाते हैं, प्रवचन समाप्त होने के बाद उन्हें जगाना पडता है। आत्मा शब्द के भावभासन के बिना सुने गये एक ही एक शब्दों के पुनरावर्तन का ही वह परिणाम है।

एक चाचा ने बाहर खेल रहे बच्चों से कहा कि मेरी घड़ी इस कमरे में खो गई है, कृपया मुझे घड़ी खोजने में सहाय करे। सभी बच्चों ने कमरे में घड़ी खोजना प्रारम्भ किया परन्तु घड़ी मिल ही नहीं रही थी। तब एक बच्चे ने सभी बच्चों को कमरे में से बाहर जाने के लिये कहा और कुछ ही पलों में उसने कमरे में से घड़ी खोज ली। जब चाचा एवं सभी बच्चों ने घड़ी मिलने का राज़ पूछा, तब वह समझदार बच्चा बोला कि मैं घड़ी के सैकंड कांटे के चलने की आवाज सुनना चाहता था, जो कि बच्चों के कोलाहल में सुनाई नहीं दे रही थी। विकल्पों के कोलाहल से हम इस तरह घिरे हुये है कि चैतन्य तत्त्व की पुकार हमें सुनाई नहीं दे रही है, चैतन्य तत्त्व का का जानना–जानना हमारी द्रष्टि में नहीं आ रहा है।

विकल्पों का कोलाहल मंद होने पर जब भी वाणी सुने, तब वाणी को ग्रहण न करे, मात्र आशय को ग्रहण करने पर शिष्य में भी वही घटित होता है। जैसे चायपत्ती को न पीकर भी चाय पी लेते हैं, ऐसे ही वाणी को ग्रहण न करके वाणी के भाव को ग्रहण करे।

16. विकल्प से निर्विकल्प

जब आप किसी के बारे में यह कहते हैं कि उसे ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए। अरे! चलो मान लिया कि उसे ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए, परन्तु क्या आपको भी यह विकल्प करने योग्य है? आप विचार करो कि **निजात्मा मे उत्पन्न होने वाला विकल्प मेरे लिये आश्रव तत्त्व है और उस व्यक्ति को जो कार्य करने के विकल्प उठे थे, वे मेरे लिये अजीव तत्त्व है। आश्रव तत्त्व हेय है, जबकि अजीव तत्त्व मात्र ज्ञेय है।** अज्ञानी जीव उस ज्ञेय की चिन्ता में इतना व्यस्त है कि यहाँ जो विकल्प उठ रहे हैं, उनकी ओर तो उसकी नज़र ही नहीं जाती। अरे! मैं जब अपने विकल्पों को भी नहीं रोक सकता, फिर भी मेरा प्रयास यही रहता है कि मैं अन्य के विकल्पों को भी रोक दूं या बदल दूं।

हे चैतन्य परमात्मा! प्रतिसमय जागृति रहे कि मैं चैतन्य तत्त्व इन समस्त विकल्पों में कहीं भी नहीं हूँ। मैं इन विकल्पों को कैसे रोकूँ? यह प्रश्न तो ऐसा है, जैसे नदी के पानी के बहते प्रवाह में फंसने वाला कोई व्यक्ति यह पूछे कि मैं इस बहते पानी को कैसे रोकूँ? भाई! पानी में बहने वाले व्यक्ति को चाहिए कि वह बहते पानी को रोकने का प्रयास करने की बजाय स्वयं ही पानी में से बाहर निकलकर किनारे पर चला जाये। पानी तो बहता ही रहेगा, वह रुक नहीं सकता। चूंकि ऐसा कोई मूर्ख नहीं होता, जो बहते पानी को रोकना चाहे। परन्तु हाँ, ऐसे अनगिनत अबोध अज्ञानी जीव हैं, जो यह मानते हैं कि मैं विकल्पों को रोक सकता हूँ। यहाँ तो ऐसा अदभूत स्वरुप है कि विकल्पों को रोकना भी नहीं है और विकल्पों से बाहर निकलना भी नहीं है। **मैं चैतन्य तत्त्व विकल्पों से अत्यंत न्यारा ही हूँ, निराला ही हूँ। प्रत्येक आत्मा अपने चैतन्य स्वभाव में ही स्थित है।** जब जीव श्रद्धान में यह मानता है कि मैं भगवान आत्मा इन विकल्पों के प्रवाह में कहीं भी नहीं हूँ। मैंने भ्रम से यह माना था कि मैं विकल्पों के प्रवाह में बह रहा हूँ। जब ऐसी द्रष्टि प्रकट होती है, इसी का नाम सम्यग्द्रष्टि है। मैं चैतन्य प्रदेश के अतिरिक्त अन्य किसी भी रागादि विभावों के प्रदेशों पर नहीं हूँ, अपनी श्रद्धा

में ऐसा स्वीकार होना ही धर्म का मूल है। मान्यता यथार्थ होने पर अपूर्व धर्म प्रकट होता है। मैं अपने चैतन्य स्वभाव से एक समय के लिये भी बाहर नहीं गया। फिर भी भ्रमणा से यह माना कि मुझे विकल्प उत्पन्न होते हैं, बताईए! मैं क्या करुं? बस, इतना ही तो मानना है कि दर्पण में जो ये प्रतिबिम्बित हो रहे है, उन द्रश्यों का दर्पण में प्रवेश नहीं हुआ है। रागादि विकल्परुपी ज्ञेयों का ज्ञान में प्रवेश हुआ ही नहीं है। ऐसी श्रद्धा होने पर आत्मा त्रिकाल विकल्पों से मुक्त होता है।

मैं शुद्ध चैतन्य स्वभावी भगवान आत्मा रागादि विकारी भावों की तरंगो में कहीं भी मिला ही नहीं हूँ। जब भगवान आत्मा में उपयोग स्थिर होता है, तब पर पदार्थो से उपयोग सहज ही हट जाता है। **स्वभाव में स्थिर होना ही विभाव से मुक्त होने का एक मात्र उपाय है।**

अज्ञानी विचार करता है कि अब तो मुझे ये राग–द्वेष के भाव नहीं करना है। वह मानता है कि क्रोधादि भावों का कर्ता मैं हूँ। जब यह द्रष्टि में आता है कि ये रागादि भाव पर के लक्ष्य से और कर्मोदय के निमित्त से उत्पन्न होते हैं, उस समय भी मैं चैतन्य स्वभावी भगवान आत्मा शुद्ध हूँ। जैसे ही शुद्धता की ओर द्रष्टि गई कि पर के लक्ष्य से उत्पन्न होने वाले विकल्पों में से अपनापन छूट जाता है।

मुझे रागादि भाव नहीं करना है, ऐसे विकल्पों से रागादि भाव दूर नहीं होते हैं। परन्तु चैतन्य तत्त्व की अनुभूति से रागादिभाव दूर होते हैं। पर्याय की अशुद्धता के काल में भी द्रव्य स्वभाव की शुद्धता की जागृति बनी रहे। विकल्प का विकल्प तो विकल्प है ही, निर्विकल्प होने का विकल्प भी विकल्प ही है। **आत्मा में उत्पन्न होने वाला कोई भी विकल्प आत्मा से महान नहीं है। जब आत्मा के आश्रय से प्रकट होने वाली निर्विकल्प अनुभूति भी भगवान आत्मा से महान नहीं है, तब विकल्प की पर्याय आत्मा से महान कैसे हो सकती है?** अशुद्ध पर्याय हो या शुद्ध पर्याय, पर्याय के लक्ष्य से विकल्प ही उत्पन्न होते हैं। प्रतिसमय जागृति रहे, चैतन्य स्वभावी त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा का महिमाभाव आये बिना पर्यायद्रष्टि छूटती ही नहीं है।

17. यह पद तुम्हारा पद नहीं

रागादि भाव परपद है और चैतन्य स्वभाव स्वपद है। अज्ञानी परपद में सोता है और ज्ञानी स्वपद में जागृत है। प्रतिसमय रागादि भाव उत्पन्न होते रहते हैं, अत: प्रतिसमय यह जागृति रहे कि यह पद मेरा पद नहीं है, पर्याय मेरा पद नहीं है, मैं परपद में क्यों सो रहा हूँ, परपद में एकत्व क्यों करता हूँ? मैं चैतन्य मात्र हूँ।

जैसे बेटा पड़ौसी के घर जाये, उसमें माँ को कोई एतराज नहीं है। वहाँ जाकर तोडफोड़ करने पर एतराज है। इसलिये माँ अपने बेटे से कह देती है कि अब, तू पड़ौसी के घर जायेगा ही नहीं। ऐसे ही आचार्य देव कहते हैं कि तू पर को जानने मत जाना, भले ही स्व और पर को जानना तेरा स्वभाव है। जैसे गाड़ी चलाते समय अपनी लेन छोडकर हम गाड़ी नहीं चलाते। परन्तु कभी अपने आगे कोई गाड़ी धीमी गति से चल रही हो, तो ओवरटेक करने के लिये हम दूसरी लेन पर जाते हैं, जो अपनी नहीं, बल्कि पर की लेन है। ओवरटेक करके हम अपनी लेन पर वापिस लौट आते हैं। ऐसे ही ज्ञानी स्व को जानते हैं, परन्तु कर्मोदय के निमित्त से पर को जानने की स्थिति आये, तो भी पर को जानकर अतिशीघ्र गति से पर से हटकर स्व को जानने लगते हैं। पर की लेन में जाने से पहले अपनी लेन में सुरक्षित पहुँच जाउँगा, इस विश्वास के साथ हम पराई लेन में जाते हैं। ऐसे ही ज्ञानी पर को जानकर भी स्व में स्थिर हो जायेंगे, इस श्रद्धान के साथ पर को जानते हैं। भले ही गाड़ी पराई लेन में चल रही हो, हमें श्रद्धा होती हैं कि हम अपनी गाड़ी में ही बैठे हैं, गाड़ी के बाहर नहीं निकले हैं। ऐसे ही ज्ञानी को यह श्रद्धा होती हैं कि पर को जानने के काल में भी मैं अपने चैतन्य स्वभाव से बाहर नहीं गया हूँ। **ज्ञानी श्रद्धा की प्रत्येक पर्याय में मंगलसूत्र पहनकर चलते हैं। इसलिये ज्ञानी पर में जाकर भी पर में नहीं जाते।** अज्ञानी ने अनादिकाल से पराई लेन में ही गाड़ी चलाई है और अनगिनत अतिक्रमण किये हैं, अनंत भावमरण किये हैं। जब राग को दु:ख का कारण जाना, फिर राग से संगति करना कौन चाहेगा?

18. क्षयोपशम ज्ञान से पार ज्ञान स्वभाव

अभी–अभी समुद्र मार्ग से यात्रा के दौरान यह ख्याल आया कि एक छोटा–सा पत्थर तालाब में हलचल कर सकता है, परन्तु सागर में यदि पहाड भी गिर जाये, तो भी उसे विचलित नहीं कर सकता। मैं सभी पाठकों से निवेदन करता हूँ कि **भगवान! आप क्षयोपशमज्ञान का तालाब नहीं हैं, बल्कि त्रिकाल ज्ञान स्वभावी सागर हैं, जिसे कर्मरुपी पर्वत छू भी नहीं सकते। अनुभव प्रमाण से इस त्रिकाल सत्य का स्वीकार करें।**

अध्यात्म क्षेत्र में प्रवेश करके भी क्षयोपशमज्ञान पर ही द्रष्टि रहने से पर्यायद्रष्टी ही रह गये, मिथ्याद्रष्टी ही रह गये। भूतकाल में धन–सम्पति के प्रवाह पर द्रष्टि जाती थी, अब क्षयोपशमज्ञान के प्रवाह पर द्रष्टि जाती है। दोनों स्थिति में जीव पर्यायद्रष्टी ही रहता है, द्रव्यद्रष्टी नहीं।

चेतन द्रव्य, चैतन्य गुण और चेतना पर्याय है। जैसे खट्टा–मीठा आदि रस गुण की पर्यायें है, उनमें त्रिकाल टिककर रहने वाला रस गुण है, ऐसे ही जानने–जाननेरुप परिणमन में टिककर रहने वाला ज्ञान गुण है। वही चैतन्य है। इस चैतन्य स्वभाव के माध्यम से चैतन्य तत्त्व है, वही मंगलसूत्र है।

यदि हम केवल रस को रखने का प्रयास करेंगे तो अकेला रस तो कभी होता ही नहीं है। रस किसी न किसी पर्याय के रुप में परिणमित ही होगा। जैसे मीठा रस होगा या खट्टा रस होगा, इत्यादि। ऐसे ही जिस जीव को ज्ञानपर्याय के विशेषों पर द्रष्टि नहीं होती है, उसे ही चैतन्य रस का अनुभव हो सकता है। पर्याय होने पर भी जिसने उस पर्याय में भी ध्रुव स्वभाव को ही देखा है, ध्रुव स्वभाव में ही एकत्व किया है, वही सम्यग्द्रष्टी है।

लोग समुद्र के पास बड़ी–बड़ी इमारतों में समुद्र से निश्चिंत होकर रहते हैं। क्योंकि वे समुद्र के स्वभाव को अच्छी तरह जानते हैं। वे जानते और मानते हैं कि समुद्र में कितनी ही तरंगे उछले, परन्तु समुद्र अपनी मर्यादा लांघकर इमारत तक पहुँचने वाला नहीं है। और उन्हें यह भी श्रद्धा है कि

समुद्र का पानी इतना पीछे भी नहीं चला जायेगा कि भविष्य में कोई व्यक्ति उसकी इमारत और समुद्र के बीच में नई इमारत खड़ी कर दे। इस श्रद्धा के बल पर तो लोग सी–फेस मकान खरीदने के लिये करोड़ो रुपये खर्च करना चाहते हैं। फिर भले ही करोड़ों रुपये कमाने के पीछे मनुष्य जीवन व्यर्थ में बर्बाद भी क्यों न हो जाये? हे चैतन्य प्रभु! एक बार इस ज्ञानसागर का स्वरुप भी समझ ले।

ज्ञानसागर और ज्ञानसागर की तरंगो के भेद को समझ लेना चाहिए। अधिकांश लोग समुद्र की तरंगो को समुद्र मान लेते हैं। वे समुद्र के असली स्वरुप को समझ ही नहीं पाते। सागर की लहरें आदि और अंत युक्त होती है, परन्तु सागर अनादि–अनन्त है। क्षयोपशमज्ञान की लहरें क्षणिक हैं, परन्तु ज्ञानसागर नित्य है। मैं ज्ञानसागर हूँ। हमें जो याद रहता है, वह तो ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम का परिणाम है और जो याद नहीं रहता है, वह ज्ञानावरण कर्म के उदय का परिणाम है। मैं क्षायोपशमिक भाव भी नहीं हूँ और मैं औदयिक भाव भी नहीं हूँ। मैं परम पारिणामिक भाव हूँ।

मोबाईल फोन से बात करने पर दूर–दूर तक की आवाज सुनाई देती है, तब मोबाईल फोन की महिमा नहीं आनी चाहिए बल्कि चैतन्य स्वभाव की महिमा आनी चाहिए कि एक समय में लोकालोक को जानने–देखने की सर्वज्ञत्व–सर्वदर्शित्व शक्ति मुझ में त्रिकाल प्रकट हैं।

जैसे लोक में कहते हैं कि धन कमाना आसान है, परन्तु बचाना कठिन है। अरे भाई! धन बचाना भी आसान है, परन्तु पचाना कठिन है। ऐसे ही पहले शास्त्र की गाथा एवं श्लोक याद नहीं रहते थे। अब याद रहने लगे। ज्ञान बच तो गया, परन्तु पच नहीं सका। पचाने का आशय यह है कि क्षयोपशमज्ञान की तरंगें कितनी ही ऊँची उछले, परन्तु चैतन्य स्वभाव तो जैसा है, वैसा ही है। मैं चैतन्य मात्र हूँ, मुझमें क्षयोपशम ज्ञान की तरंगों का प्रवेश नहीं है, ऐसी जागृति के बल पर ही क्षयोपशमज्ञान पचाया जा सकता है।

चैतन्य तत्त्व के लक्ष्य बिना यदि समयसार कंठस्थ भी हो जाये, क्षयोपशमज्ञान भी बढ़ जाये तो अहंकार का भाव उत्पन्न होता है। जब

भगवान आत्मा की बात सुनने आये थे, तब कषायभाव मंद थे, इसने तत्त्व की बात सुनी, क्षयोपशम ज्ञान में वृद्धि हुई, परिणाम यह आया कि पहले से भी तीव्र कषायी होकर वापिस लौटा। याद रहे, ज्ञान बढ़ने से कषाय नहीं बढ़ता है, परन्तु चैतन्य तत्त्व के लक्ष्य का यथार्थ निर्णय न होने के कारण जीव क्षयोपशमज्ञान की अनित्य तरंगो में अटक जाता है।

जैसे किसी अज्ञानी को थोड़ी देर पहले क्या खाया था, इतना भी याद नहीं रहता है, वह व्यक्ति आत्मघात करके नरक में जन्म लेता है और उसे वहाँ पूर्वभव का भी स्मरण हो जाता है। कुमति और कुश्रुत इन दो ज्ञान से कुमति, कुश्रुत और कुअवधि ये तीन ज्ञान हो जाते हैं। अतः याद रहे, क्षयोपशमज्ञान बढ़ने में आत्मा का किंचित् भी पुरुषार्थ घटित नहीं होता है।

आत्मानुभूति के बाद ज्ञानी जो शास्त्र लिखते हैं, उन वाक्यों में अनुभूति व्यक्त ही नहीं हो पाती है। जब अज्ञानी उन शास्त्रों को अपनी बुद्धि अनुसार पढ़ता है, तब स्वयं के आग्रह के कारण वे बातें अज्ञानी तक पहुँच ही नहीं पाती, जो ज्ञानी समझाना चाहते थे। अतः याद रहे, मात्र शास्त्र पढ़कर कोई आत्मज्ञान को उपलब्ध नहीं हो सकता।

जब तक मैं सुन रहा हूँ या मैं पढ़ रहा हूँ, ऐसा विचार आता है, तब तक स्वभाव की ओर द्रष्टि ही नहीं जाती। सुनने में और जानने में बहुत अन्तर है। पढ़ने में और जानने में बहुत अन्तर है। सुनने में कान और पढ़ने में आँख निमित्त हैं। **मैं मात्र जानता हूँ।** जब ज्ञान स्वभाव की ओर द्रष्टि जाती है, तब समस्त इन्द्रियों की ओर लक्ष्य ही नहीं जाता है। यद्यपि शब्दों में भाव नहीं होते, परन्तु जीव भाव से भीगकर सुने या पढ़े तो आत्मा में भाव प्रकट हो सकते हैं।

उंगली को ही मत देखो, बल्कि उंगली जिसे दिखा रही है, उस चाँद को देखो। उपदेश किसे, कहाँ और किस भाषा में दिया जा रहा है यह मत देखो, बल्कि उपदेश का विषय जो भगवान आत्मा है, उसे देखो। **देव–शास्त्र–गुरु से प्राप्त क्षयोपशम ज्ञान से भी परम पारिणामिक भाव की अनुभूति तक पहुँचना ही देव–शास्त्र–गुरु का सच्चा विनय है।**

19. राग ही नहीं, वीतरागता के प्रदेश से भी न्यारा चैतन्य

राग का कर्ता आत्मा नहीं है, बल्कि कर्मों का उदय है। ऐसे मानने वाला जीव राग की पर्याय का कर्ता स्वद्रव्य है, यह तो स्वीकार नहीं करता, परन्तु पुद्गल कर्मोदय जो कि परद्रव्य है, उन्हें राग की पर्याय का कर्ता मानता है। इसलिये जीव और पुद्गल के बीच वज्र की दिवार जानकर राग का कर्ता कौन है? इस बात पर विचार करना चाहिए। और हाँ, जहाँ राग के भाव को कर्मोदयजन्य कहा हो, वहाँ यह आशय जानना चाहिए कि राग को परभाव सिद्ध करने के लिये परद्रव्य को निमित्त कहा गया है। जिस कार्य में परद्रव्य के निमित्त के आधीन होना पडे, वह कदापि स्वभाव नहीं हो सकता।

जब आत्मा अर्थात् स्वद्रव्य को भी राग की पर्याय का कर्ता मानने का निषेध किया, तब परद्रव्य को राग की पर्याय का कर्ता कैसे मान सकते है? अत: याद रहे, **सब से पहले स्वद्रव्य और परद्रव्य के बीच भेदज्ञान की दिवार बना लेना। एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ कर ही नहीं सकता।**

तीर्थंकर भगवान के पैर जमीन को नहीं छूते, परन्तु वस्तु की स्वतंत्रता की चरम सीमा से देखने पर हमारे पैर भी जमीन को नहीं छूते हैं। जमीन के परमाणु का उत्पाद-व्यय-धौव्य जमीन के परमाणु में होता है और पैर के परमाणु का उत्पाद-व्यय-धौव्य पैर के परमाणु में होता है। निरन्तर भेदज्ञान चलता रहे। जब सड़क के परमाणु स्वयं की तत्समय की उपादानगत योग्यता से गर्म होते है, तब गर्म सूरज की किरणों को निमित्त कहते हैं। जब पैर के परमाणु स्वयं की तत्समय की उपादानगत योग्यता से गर्म होते है, तब गर्म सड़क को निमित्त कहते हैं। यदि गर्म सड़क के परमाणु, पैर के परमाणु को गर्म नहीं कर सकते, तो पैर के गर्म परमाणु आत्मा का क्या कर सकते हैं?

सर्वप्रथम दो द्रव्यों में, फिर दो गुणों में और फिर दो पर्याय के बीच भेद जानना। हम सीधे ही राग की पर्याय से भेदज्ञान करते हैं और द्रव्यकर्म जो कि परद्रव्य है, उन्हें राग का कर्ता मान लेते हैं। अज्ञानी शास्त्र पढ़कर या प्रवचन सुनकर वमन कर देता है। इसलिये उसके जीवन में कोई आध्यात्मिक क्रान्ति घटित ही नहीं हो पाती।

क्रोध की उत्पत्ति में शत्रु बहिरंग निमित्त है और कर्मोदय अंतरंग निमित्त है। परन्तु वे दोनों आखिर निमित्त ही तो है। उन्हें कार्य का कर्ता मान लेने पर कर्तापने का एक समान दोष लगता है। द्रव्य कर्म सूक्ष्म है और भाव कर्म स्थूल है। ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म हमारे ज्ञान में जानने में आते नहीं है, परन्तु रागादि भाव हमारे जानने में आते हैं, इसलिये द्रव्यकर्म को सूक्ष्म और रागादि भावकर्म को स्थूल कहा है।

ज्ञान का जानने-जाननेरुप परिणमन, ज्ञान का ज्ञेय और ज्ञेय को जानने का राग का विकल्प इन तीनों की स्वतंत्रता का स्पष्ट स्वरुप समझ में आ जाये, तो चैतन्य स्वभाव = मंगलसूत्र, समझ में आ सकता है।

चैतन्य के प्रदेश और राग के प्रदेश भिन्न-भिन्न है। इस कथन का आशय यह है कि संयोग की अपेक्षा से देखने पर आत्मा और शरीर एकक्षेत्रावगाही हैं। परन्तु स्वभाव की द्रष्टि से देखने पर चैतन्य के प्रदेश और राग के प्रदेश भिन्न-भिन्न हैं। जैसे श्रीखंड में शक्कर और दहीं को अलग नहीं कर सकते। परन्तु इतना भेद जान सकते हैं कि श्रीखंड में जो मीठापन है, वह शक्कर है और जो खट्टापन है, वह दहीं है। ज्ञान का स्वरुप निराकुलता है और राग का स्वरुप आकुलता है। त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा की अनुभूति होने पर ही यथार्थ श्रद्धान होता है कि अनादिकाल से भगवान आत्मा राग से भिन्न ही था, भिन्न ही है और भिन्न ही रहेगा।

राग का विकल्प, जो कि आत्मा की पर्याय है। आत्मा की पर्याय के कारण आत्मा का जाननेरुप परिणमन नहीं होता, तो परपदार्थो के कारण, परज्ञेयों के कारण ज्ञान का जाननेरुप परिणमन कैसे हो सकता है? ये जो रागादि भाव उत्पन्न हो रहे हैं, उनसे मुझे क्या? मुझे अर्थात् चैतन्य को क्या? **मैं अर्थात् चैतन्य। चैतन्य के साथ ऐसा अभेदपना मानना कि मैं शब्द सुनते ही चैतन्य तत्त्व ही द्रष्टि में आना चाहिए।**

देह में चाकू घुस जाता है, क्योंकि पुद्गल स्कंध में बंध को प्राप्त परमाणुओं के बीच अभी–भी रिक्तस्थान होता है, लेकिन चेतन के असंख्यात प्रदेशों में बीच में कोई रिक्तस्थान नहीं होता है, अत: चैतन्यतत्त्व में रागादि विकल्पों का प्रवेश होने के लिये अवकाश ही नहीं है। मैं चैतन्य स्वभावी भगवान आत्मा स्वयं सुरक्षित परिपूर्ण तत्त्व हूँ।

राग के प्रदेश की तरह वीतरागता के प्रदेश का भी चैतन्य तत्त्व में प्रवेश नहीं है। जैसे रसोईघर में आग पर पानी गरम हो रहा है और आप अपने कमरे में स्थित है। जब गैस समाप्त होने पर आग बुझ जाती है, तब गरम पानी अपने आप ठंडा हो जाता है। गरम पानी की तरह ठंडा पानी भी रसोईघर में ही है, कमरे में नहीं। ऐसे ही पर्याय में राग उत्पन्न होता है और चैतन्य तत्त्व अपने स्वरुप में स्थित है। जब कर्मोदय का क्षय होता है, तब राग से वीतरागरुप परिणमन होता है। राग की तरह वीतरागता भी पर्याय के प्रदेश पर ही है, आत्मद्रव्य में नहीं। इस गहन रहस्य को कुछ विरले जीव ही समझ सकते हैं। **यदि वीतरागता के प्रदेश पर द्रष्टि का विषयभूत चैतन्य तत्त्व होता, तो वीतरागता की उत्पाद–व्यय के साथ चैतन्य तत्त्व का भी उत्पाद–व्यय होना चाहिए। केवलज्ञान के प्रदेश भिन्न है और ज्ञायक भिन्न है। आत्मानुभूति से ही यह रहस्योद्घाटन होता है।**

अप्रमत्तविरत गुणस्थान में निर्विकल्प आत्मानुभव के बाद आचार्य लिखते हैं कि ज्ञायक अप्रमत्त भी नहीं है और प्रमत्त भी नहीं है। अप्रमत्त अवस्था में अनुभव में आने वाला ज्ञायक अप्रमत्त भी नहीं है। वह तो ज्ञायक ही है और ज्ञायक ही अनुभव में आता है। **मैं ज्ञायक ही हूँ। वीतरागता के प्रदेश भी जब ज्ञायक को छूते नहीं है, तो राग के प्रदेश का तो कहना ही क्या? हे भव्य! ज्ञायक न्यारा ही है, ज्ञायक निराला ही है।**

मैं नहीं जानता कि जगत में अगले क्षण क्या होगा? परन्तु मैं इतना जानता हूँ कि मैं अनन्तकाल तक जानने वाला ही रहूँगा। ज्ञानी कहते हैं कि मुझे इस बात का भय नहीं है कि भविष्य मे क्या होगा? क्योंकि मुझमें कुछ होता नहीं है। **जो कुछ भी होता है, वह पर्याय में होता है, पर्याय मेरा स्वरुप नहीं है।**

20. पर्याय का आदर्श द्रव्य

आत्मा निराला है, ज्ञान पर्याय निराली है, अत: आत्मानुभूति भी निराली ही है। प्रतिसमय परिणमित होती पर्याय का आदर्श त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा है। हम बीते हुये कल और आने वाले कल, दोनों को कल ही कहते हैं। जो वर्तमान में नहीं है, उनके भेद में हम जाना ही नहीं चाहते। **वर्तमान में त्रिकाली की अनुभूति ही आत्मानुभूति है।** मैं राग को भी जानने वाला और वीतरागता को भी जानने वाला हूँ। मैं मात्र जानने वाला हूँ। द्रव्य स्वभाव सहज है। जो पर्याय सहज स्वभाव का आश्रय लेती है, वह पर्याय भी सहजरुप से सहज हो जाती है। इसमें गहन रहस्य है।

देहरूपी देवल में विराजमान निज परमात्मा को भूलकर जिनमंदिर में परमात्मा की खोज करने जाना भी पर की ही रुचि है। पर परमात्मा में लीन होने में अनादिकालीन पर में लीन होने की वृत्ति पुष्ट होती है, अज्ञानी को वह दशा सुखरुप लगती है। याद रहे, पर्याय का आदर्श एक मात्र निज शुद्धात्म द्रव्य है। एक मात्र निज परमात्मा ही साधना का साध्य है।

जिनमंदिर में आत्मध्यान में लीन एक मात्र जिनेन्द्र भगवान है। भक्तों की भीड तो शुभभाव में लीन है। प्राय: अज्ञानी भीड से प्रभावित होता है, अत: वह भी भक्तों की भीड के साथ हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता है, परन्तु भगवान के समान अंतर्मुख नहीं होता।

सूरज की तस्वीर से प्रकट दीपक अधिक महिमावान है। पर परमात्मा की तस्वीर या प्रतिमा से निजात्मा का दीपक अधिक महिमावान है। जैसे तस्वीर या प्रतिमा को प्रकाशित करने वाला प्रकट दीपक ही है, ऐसे ही परमात्मा की तस्वीर या प्रतिमा को जानने वाला निजात्मा का ज्ञानरुपी दीपक ही है। यह भी परम सत्य है कि पर परमात्मा के केवलज्ञान से निज परमात्मा का अज्ञान भी भला है। क्योंकि पर परमात्मा का केवलज्ञान कभी अपना नहीं हो सकता, परन्तु निजात्मा का अज्ञान छूटकर अपना केवलज्ञान हो सकता है। पर्याय का आदर्श द्रव्य होने से सर्वज्ञ स्वभावी द्रव्य के आश्रय से पर्याय में सर्वज्ञता प्रकट होती है।

21. मैं बिन्दु नहीं, बल्कि रेखा हूँ

राग का जन्म है, राग का मरण है। चैतन्य स्वभावी भगवान आत्मा का जन्म और मरण नहीं है। ज्ञानी चैतन्य जीवन की रेखा को भूलकर राग के बिन्दु में एकत्व नहीं करते। जैसे मटका टूटता है, परन्तु मिट्टी नहीं। ऐसे ही ज्ञान पर्याय का व्यय होता है, परन्तु ज्ञान स्वभाव का नहीं। जैसे व्यक्ति चाहे अंधेरे से घिरा हो या प्रकाश से, व्यक्ति की सत्ता स्वयं के कारण है, अंधेरे या प्रकाश के कारण नहीं। ऐसे ही आत्मा में राग हो या वीतरागता हो, चैतन्य स्वभावी भगवान आत्मा की सत्ता स्वयं के कारण है, राग या वीतरागता की पर्याय के कारण नहीं।

प्रतिसमय यह जो रागादिरुप परिणमन हो रहा है, वह मैं नहीं हूँ, ये जाना, लेकिन प्रतिसमय यह जो जानन–जानन रुप ज्ञान का परिणमन हो रहा है, वह भी मैं नहीं हूँ। उस परिणमन में भी जो त्रिकाल एकरुप भगवान आत्मा चैतन्य मात्र है, उसमें दो भेद नहीं होते हैं। **एक समय की पर्याय में अनुभव में आने वाला द्रव्य एक समय के लिये नहीं है, वह तो त्रिकाल ही है।**

अज्ञानी जीव को चार–छह घण्टे स्वाध्याय करके जो मंदकषाय से शांति का अनुभव होता है, उसे ही आत्मिक शांति मानकर वह संतुष्ट हो जाता है। समझने योग्य बात तो यह है कि वीतरागता फल पर्याय में जितने अंशो में शांति प्रकट होती है, ज्ञानी उस शांति को भी अपना स्वरुप नहीं मानते। त्रिकाल शांत स्वभावी भगवान आत्मा में ही ज्ञानी का अपनत्व होता है।

जब तक द्रव्य के जोर से आत्मा की रुचि जागृत नहीं होती, तब तक निर्विकल्प आत्मानुभूति प्रकट नहीं हो सकती। जागृति रहे, रागादि भावों के समान वीतरागता भी एक समय की पर्याय होने से बिन्दु है। अज्ञानता के समान केवलज्ञान भी एक समय की पर्याय होने से बिन्दु है। **मैं बिन्दु नहीं हूँ, मैं रेखा हूँ। मैं पर्याय नहीं हूँ, मैं द्रव्य हूँ। याद रहे, बिन्दु में रेखा का अनुभव होने पर भी बिन्दु कभी रेखा नहीं हो जाता।**

22. संसार को सदा काल के लिये अलविदा

जो जीव अनन्त काल तक स्वरुप में स्थिर होने का द्रढ संकल्प एवं निश्चय करके स्वभाव सन्मुख होता है, उस जीव का एक समय के लिये उपयोग स्वरुप में स्थिर होता है। जैसे किसी जीव को ऐसा विचार आये कि अभी चार बजे है, छह बजे भोजन करना है। दो घण्टे का समय बाकी है, वह जीव छह बजे भोजन करना ऐसे संकल्प को लेकर एक समय के लिये भी स्वरुप में स्थिर नहीं हो सकता। आत्मानुभूति तो उस जीव को प्रकट होती है, जिस जीव का ऐसा द्रढ संकल्प हो कि अनन्त काल के लिये इस बाह्य जगत को अलविदा करता हूँ। यह बात अलग है कि पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण उपयोग निरंतर आत्मस्वरुप में स्थिर न टिके। परन्तु साधक का निश्चय तो संसार को सदा के लिये अलविदा करना ही होता है।

अज्ञानी को यह भ्रम होता है कि निर्धन से धनवान होने पर निर्धनता का दु:ख समाप्त हो जाता है। सत्य तो यह है कि हम बडा दु:ख आने पर छोटा दु:ख भूल जाते है। जैसे हम हमारी कैंसर की बिमारी के समाचार सुनते ही सिरदर्द का दु:ख भूल जाते हैं। इस जगत में सुखी और समृद्ध कोई नहीं है। क्योंकि जो सुखी है, वह समृद्ध नहीं है और जो समृद्ध है, वह सुखी नहीं है। अनित्यता की असारता के बोध से जीव इतना थका हो कि अब बाहर आने योग्य कुछ लगता ही नहीं है। वह जानता है कि **मैंने अनादिकाल से पर को जाना। परन्तु पर को जानकर क्या जाना? पर में जानने योग्य कुछ भी नहीं है, यह जाना**। परपदार्थो की असारता का बोध लेकर उदासीनता को प्राप्त जीव को ही नित्य की यात्रा प्रारम्भ होती है।

हे जीव! जीवन में इन्द्रिय विषयभोग की वृत्ति को पुष्ट करने के निमित्त तो बहुत मिलेंगे, परन्तु प्रतिसमय जागृति रहे कि जीव का पुरुषार्थ बलवान है। इस चैतन्य तत्त्व से महान जगत में कुछ भी नहीं है। शरीर का प्रत्येक अंग प्रतिसमय क्षीण हो रहा है। विचार करो! क्या आत्मा की परिणति की निर्मलता में प्रतिसमय वृद्धि हो रही है?

23. ज्ञायक और ज्ञायक का विकल्प

जिस जीव को सम्यग्दर्शन, केवलज्ञान एवं मोक्ष की भी रुचि नहीं होती है, बल्कि एक मात्र चैतन्य तत्त्व की ही रुचि होती है, उस जीव को सहज ही सम्यग्दर्शन प्रकट होता है। **हाजिर ज्ञायक का विचार न करके गैरहाजिर सम्यग्दर्शन के विचारों में उलझना, हाजिर ज्ञायक का अनादर है।**

तत्त्वविचार करने पर भी जीव आत्मानुभूति से वंचित रह जाता है। रागरुप विकल्प में उपादेयबुद्धि होने के कारण आत्मा की पर्याय साक्षात् आत्मद्रव्य का अनुभव नहीं करती है। जब ऐसा विकल्प उत्पन्न होता है कि मैं भगवान आत्मा हूँ। तब श्रद्धा गुण की पर्याय मैं भगवान आत्मा हूँ, इस विकल्प में एकत्व स्थापित करती है, परन्तु साक्षात् भगवान आत्मा में एकत्व नहीं करती है। बस, इसलिये जीव प्रत्यक्ष आत्मानुभूति से वंचित रह जाता है। मैं भगवान आत्मा हूँ, जब यह विकल्प भी विलय को प्राप्त होता है, तब पर्याय में साक्षात् आत्मद्रव्य का अनुभव होता है। जब ज्ञान की पर्याय में साक्षात् आत्मद्रव्य जानने में आता है, तब श्रद्धा गुण की पर्याय आत्मद्रव्य में एकत्व स्थापित करती है, तब ही चारित्र गुण की पर्याय आत्मद्रव्य में स्थिर होती है।

याद रहे सम्यग्ज्ञान आत्मा की ज्ञान गुण की शुद्ध पर्याय है। सम्यग्दर्शन आत्मा के श्रद्धा गुण की शुद्ध पर्याय है। सम्यक्चारित्र आत्मा की चारित्र गुण की शुद्ध पर्याय है। **आत्मानुभूति आत्मा के अनन्त गुणों की एकरुप शुद्ध पर्याय है।**

यदि कोई व्यक्ति धन में से सुखबुद्धि नहीं छोडता है, उसका कारण यह नहीं है कि उसे धन के रुप–रंग से प्रेम है। सच तो यह है कि वह मानता है कि धन के कारण उन भौतिक पदार्थो को खरीदा जा सकता है, जिन पदार्थो में उस व्यक्ति की सुखबुद्धि है। अज्ञानी मानता है कि विकल्पों के माध्यम से ही पांच इन्द्रियों के विषयभोग भोगे जाते हैं, अत: अज्ञानी को विकल्पों में उपादेयबुद्धि बनी रहती है। फिर भले ही वे विकल्प आत्मद्रव्य के भी क्यों न हो?

प्राथमिक भूमिका में साधक को घर में या पुत्र में अपना अस्तित्व बनाये रखने का प्रयास भले ही छूट गया हो, परन्तु मैं भगवान आत्मा हूँ, ऐसे विकल्प में भी वह अपना अस्तित्व बनाये रखना चाहता है। वह जानता ही नहीं है कि इन विकल्पों से अतिरिक्त भी स्वयं की कोई सत्ता है। उस सत्ता का नाम चैतन्य सत्ता है, चैतन्य तत्त्व है, मंगलसूत्र है।

विषयभोगों की असारता का बोध हुये बिना विकल्पों को विराम मिलना असम्भव है। विकल्प में जो यह उपादेय–बुद्धि है कि विकल्प सुखरुप है, शांतिरुप है, विकल्प है तो मैं हूँ, ऐसी उपादेय–बुद्धि छूटे और जीव यह माने कि मैं त्रिकाली ध्रुव चैतन्य तत्त्व हूँ। मुझे कभी–भी किसी भी परपदार्थ के पास सुख की भीख मांगने के लिये हाथ फैलाने की आवश्यकता नहीं है।

निर्विकल्प आत्मानुभूति में एक समय के लिये जो चैतन्य परमात्मा अनुभव में आया और अगले समय यदि यह विकल्प भी आये कि ऐसा भगवान आत्मा हमेशा अनुभव में आता रहे, बस इस विकल्प से ही निर्विकल्प आत्मानुभव छूट जाता है। हे चैतन्य परमात्मा! जरा विचार करो! भगवान आत्मा सदा ही अनुभव में आता रहे, ऐसे विकल्प में भी निर्विकल्प आत्मानुभूति का आनन्द छूट जाता है, तब भौतिक वस्तुओं के सम्बन्ध में भविष्य की अनेक कल्पनायें करने से आनन्द कैसे प्रकट होगा? **मन तो सदा ही भूत और भविष्य में ही डूबा रहता है। हे जीव! आज तक हमने मन की पुकार तो अनेक बार सुनी, परन्तु चैतन्य की पुकार एक समय के लिये भी नहीं सुनी।**

काल का सब से छोटा अंश समय है। समय इतना सूक्ष्म है कि वर्तमान में हमें ज्ञान में समझ में भी नहीं आता है, फिर भी आत्मानुभूति के पश्चात् भी एक समय में होने वाली आत्मानुभूति का स्मरण छूटता नहीं है। जैसे कैमरे में एक समय में खींची गई तस्वीर में द्रश्य कैद हो जाता है, ऐसे ही एक समय की अनुभव की पर्याय में चैतन्य तत्त्व का स्वरुप कैद हो जाता है, टंकोत्कीर्ण हो जाता है। **सम्यग्द्रष्टी की अनुभूति को फोटोग्राफ और केवली भगवान की आत्मानुभूति को विडियोग्राफ भी कह सकते हैं।**

24. आत्मजागृति ही धर्म है

यदि मुझे एक ही शब्द में धर्म का उपदेश देने के लिये कहा जाये, तो मैं सिर्फ इतना ही कहूँगा कि जागो। जब आँख खुलती है, तब हम उठते हैं, परन्तु जब द्रष्टि खुलती है, तब हम जागते हैं। मैं ज्ञायक हूँ, ऐसी जागृति ही धर्म है और बेहोशी ही अधर्म है। यदि मोक्ष पाना अन्तिम कदम है, तो मुमुक्षु होना पहला कदम है। आत्मजागृति ही मुमुक्षु का प्रमुख लक्षण है।

यद्यपि ज्ञानी को ही प्रतिसमय स्वयं की परिपूर्णता और स्वभाव की जागृति बनी रहती है। वे जागृत हैं कि चैतन्य की सत्ता के बाहर कहीं भी मेरी सत्ता नहीं है। स्वयं की सत्ता की जागृति का नाम ही तो धर्म है। जैसे मिठास के बाहर कहीं भी गुड की सत्ता नहीं है। ऐसे ही चैतन्यरस के बाहर कहीं भी मेरी सत्ता नहीं है। मैं भगवान आत्मा अमेरिका में नहीं हूँ, ऐसे ही भारत में भी नहीं हूँ। जैसे मैं अन्य शरीर में नहीं हूँ, ऐसे ही मैं इस शरीर में भी नहीं हूँ। आत्मा में उत्पन्न होने वाले राग में भी मैं नहीं हूँ और द्वेष में भी मैं नहीं हूँ। चैतन्य की सत्ता के बाहर कहीं पर भी मैं नहीं हूँ।

जैसे आप अपने घर में बैठकर खिड़की से बाहर एक पक्षी को दाना चुगते देखते हो, ऐसे ही मैं भगवान आत्मा अपने चैतन्य महल से बाहर गया ही नहीं हूँ। अपने शरीर की खाने की क्रिया को अत्यंत दूर से किसी पक्षी की क्रिया की तरह पराई जानना। जैसे गंगा नदी हिमालय से बहकर बंगाल तक पहुँचती है और आप अपने महल में विराजमान है। ऐसे ही मुँह को हिमालय और पेट को बंगाल जानो। जब पानी पीते समय मुँह से पेट की ओर पानी बहे, तब यह जागृति रहे कि हिमालय से गंगा बही और बंगाल की खाई में जा मिली। परन्तु मैं तो अपने चैतन्य महल में सदैव निवास करता हूँ। मैं चैतन्य तत्त्व सोता–बैठता–उठता नहीं हूँ, खाता–पीता नहीं हूँ, मैं तो ज्ञानमात्र हूँ। जिस जीव का चलना–फिरना चैतन्यमय हो गया, वह व्यर्थ के विकल्पों के कोलाहल को कदापि अपना स्वरुप मानता ही नहीं है।

कदम–कदम पर जागृति बनी रहे। जब चलते समय जैसे ही कदम आगे बढ़े, तब जागृति बनी रहे कि मैं चैतन्य स्वभावी भगवान आत्मा तो अपने चैतन्यपने में ही टिककर रहने वाला तत्त्व हूँ। मैंने एक समय के लिये भी अपने चैतन्यपने को छोडकर रागादि भावों में आगे कदम नहीं बढ़ाया है। ऐसी जागृतिपूर्वक जो चलता है, वह जीव सचमुच ही अचल सिद्धपद की ओर चलता है। जब यह विकल्प उत्पन्न हो कि मैं आज का प्रवचन पूरी तरह से ग्रहण कर लूँ। तब यह जागृति रहे कि प्रवचन अर्थात् वाणी और ग्रहण कर लूँ अर्थात् विकल्प। अरे! मैं भगवान आत्मा वाणी ग्रहण करने के विकल्प को भी ग्रहण नहीं कर सकता, तो वाणी को कैसे ग्रहण कर सकता हूँ? ऐसी जागृति ही प्रयोग है, प्रयोग ही आध्यात्मिक साधक की साधना है।

वर्तमान में हम बेहोशी में ही आदती जीवन जी रहे हैं। प्रवचन सुनते समय हमें लगता हैं कि हम प्रवचन का आनन्द ले रहे हैं, लेकिन एक करोड रुपये के नुकसान होने के समाचार मिलते ही पता चल जाता है कि प्रवचन में किसका आनन्द आ रहा था? यदि बारह बजे भोजन करने की आदत हो और तीन बजे मिले, तो हमारी भूख मर जाती है। बारह बजे की अपेक्षा तीन बजे देरी से भोजन मिलने पर अधिक भोजन करना चाहिए। सत्य तो यह है कि उसे बारह बजे भोजन करने की आदत के अनुरुप भोजन नही मिला, इसलिये भूख मर गई।

कुल परम्परा या रुढि की क्रिया एवं यांत्रिक क्रिया भी बेहोशी है। हम दिन में अनेक लोगों से अनेकानेक बार जय जिनेन्द्र बोलते हैं। विचार करो! यदि दिन में सौ बार जय जिनेन्द्र बोलते समय वीतरागी एवं सर्वज्ञ जिनेन्द्र भगवान कितनी बार याद आते है? बस इस बेहोशी का नाम ही अधर्म है। हमारी जय जिनेन्द्र बोलने की क्रिया भी यांत्रिक हो गई है। एक व्यापारी दूसरे व्यापारी को फोन करके कहता है, हेल्लो, जय जिनेन्द्र, मेरे पैसे का क्या हुआ? मैं कुछ नहीं जानता, मुझे आज ही पैसे चाहिए, यदि मुझे आज पैसे नहीं भेजे तो मुझ से बुरा कोई नहीं होगा, हाँ, ठीक है, चलो, जय जिनेन्द्र।

अरे हाँ भाई, तुझ से बुरा कोई नहीं होगा, जिसके जय जिनेन्द्र बोलने में एक क्षण भी जागृति नहीं है। यह जागृति रहे कि, जय जिनेन्द्र बोलकर हम उस व्यक्ति को सम्मान नहीं देते, जिसके सामने जय जिनेन्द्र बोलते हैं, बल्कि वीतरागी परमात्मा का आदर करते हैं कि हे जिनेन्द्र भगवान! सांसारिकजनों के संयोग में भी हमें आपका विस्मरण नहीं होता।

जिसप्रकार वसीयत किये बिना मरना हमें मरना नहीं लगता, ऐसे ही राग–द्वेष के बिना जीना हमें जीना ही नहीं लगता। कषाय भाव किसी निमित्त के कारण उत्पन्न नहीं होते, बल्कि आत्मा में पूर्वसंचित क्रोध के कारण जीव क्रोध के निमित्त की खोज में सदैव तत्पर रहता है। रास्ते पर अकस्मात देखकर एक व्यक्ति घायल करने वाले व्यक्ति का पीछा करता है, परन्तु घायल को अस्पताल नहीं पहुँचाता है। वहाँ दोनों प्रकार की सम्भावनायें थी। घायल को अस्पताल पहुँचाना या घायल करने वाले व्यक्ति का पीछा करना और उसकी पिटाई करना। उस व्यक्ति की लडाकू वृत्ति के कारण उसने पिटाई करने का रास्ता चुना।

जैसे बच्चे रास्ते पर बम फोड़ रहे हो, तो हम फूटने से पहले ही वहाँ से बचकर निकल जाते हैं, ऐसे ही जहाँ तर्क–युक्ति से विवाद होने की सम्भावना नजर आये तो हाथ जोडकर चुपचाप वहाँ से निकल जाना चाहिए। **कोई अज्ञानी तर्क से तो कोई अज्ञानी तलवार से जीतना चाहते हैं। ज्ञानी कहते हैं, हे जगतजनों! हमें जीतना नहीं हैं, हमें तो बस पाना है। उस परमविशुद्धि को पाना है, जिसके प्रकट होने पर पूर्ण सुख उदित होता है।** जिन्हें पाना है, वे व्यर्थ के विवाद में समय एवं शक्ति नहीं गंवाते। याद रहे, तर्क से कदाचित् अज्ञानी की जीत होती है, परन्तु प्राप्ति नहीं। आत्मतत्त्व का विचार एवं जागृति ही आत्मानुभूति की प्राप्ति का पहला चरण है।

अब तो देह में रक्तवहन भी हो तो चैतन्य के लिये, साँसे भी चले तो चैतन्य के लिये, पसीना भी छूटे तो चैतन्य के लिये, आँसू भी बहे तो चैतन्य के लिये, जागना भी चैतन्य के लिये, सोना भी चैतन्य के लिये, जीना भी चैतन्य के लिये, मरना भी चैतन्य के लिये, आज चैतन्य और अनंत काल तक चैतन्य, चैतन्य, चैतन्य...

आत्मा प्रवचन के एक घण्टे तक ही नहीं होता है। प्रतिसमय जागृति बनी रहे कि मैं भगवान आत्मा अनादि-अनंत नित्य हूँ। यदि चौबीस घण्टे में एक समय के लिये भी जागृति रही, तो बस हो गया जीवन सफल। क्योंकि किसी भी जीव को एक समय से अधिक समय मिलता ही कहाँ है? एक समय की आत्मजागृति से प्रकट होने वाली निराकुलता के बल पर वह जीव प्रतिसमय जागृत रह सकता है कि मैं चैतन्य मात्र हूँ।

विषयों की वासना में अंध जीवों को आत्मजागृति रुचिकर नहीं लगती। आत्मजागृति के विचार मात्र से ही उन्हें इन्द्रिय विषयों का मजा छूटने लगता है। अज्ञानी को वह मजा छोडना नहीं है, इसलिये उसे जागृत होना नहीं है। बेहोशी में इन्द्रिय सुख का मजा आ सकता है, जागृति में नहीं। यही कारण है कि पश्चिम के देशों में (अब तो पूर्वीय देशों में भी) लोग भोगों को भोगने से पहले शराब पीते हैं, जिससे बेहोश हो जाये तो इन्द्रिय भोग का मजा अधिक से अधिक ले सके। **हे चैतन्य परमात्मा! आत्मजागृति प्रकट होने पर ऐसा स्वाभाविक आनन्द प्रकट होता है कि जीव वर्तमान के ही नहीं, बल्कि अनादिकालीन दु:ख को भी भूल जाता है।**

यदि पचास करोड का बंगला भी दस रुपये के दर्पण में प्रतिबिम्बित हो, तो दर्पण का मूल्य ग्यारह रुपये नहीं हो जाता। उसी दर्पण में कीचड़ प्रतिबिम्बित हो, तो दर्पण का मूल्य नौ रुपये नहीं हो जाता। जागृति रहे कि कोई भी ज्ञेय ज्ञान में प्रतिबिम्बित हो, ज्ञान का स्वरुप कभी बदलता नहीं है, मेरा स्वरुप कभी बदलता नहीं है। जब सुई शरीर में घुसी दिखाई देती है, तब भी सुई के परमाणु सुई में ही है और शरीर के परमाणु शरीर में ही है। इन दोनों पुद्गल द्रव्यों में स्पर्श नामक गुण होने पर भी समान जाति के ये दोनों पुद्गल द्रव्य जब एक-दूसरे को छूते तक नहीं, तब स्पर्श गुण रहित आत्मा को सुई कैसे छू सकती है?

देह छूटने से पहले मिथ्यात्व छूटे, आत्मानुभूति प्रकट होने से पहले मैं यहाँ से मर नहीं सकता, आत्मानुभूति होने के बाद मरने के लिये सारा जीवन है। ऐसे द्रढ निश्चयपूर्वक प्रतिसमय आत्मजागृति बनी रहे। सच तो यह है कि **आत्मानुभूति होने पर आत्मा अमरत्व को प्राप्त होता है।**

25. ध्याता-ध्यान-ध्येय का भेद कहाँ?

जैसे बादाम के हलुवे में मात्र बादाम ही नहीं है, फिर भी हम बादाम का हलुवा कहते हैं। ऐसे ही आत्मा में मात्र ज्ञान ही नहीं है, फिर भी ज्ञानी आत्मा को ज्ञान स्वभावी आत्मा कहते हैं। गुण एवं गुणी के भेद का विकल्प ही जीव को निर्विकल्प आत्मानुभूति तक पहुँचने नहीं देता। जैसे मुख्यमंत्री पद भी है, मुख्यमंत्री व्यक्ति भी है। जब मुख्यमंत्री व्यक्ति, स्वयं को मुख्यमंत्री मानता है, तब उस समय के लिये वह स्वयं मुख्यमंत्री है। उसकी मान्यता में पद और व्यक्ति के भेद मिट जाते है। ऐसे ही **आत्मा की पर्याय आत्मद्रव्य में एकत्वपूर्वक स्थिर होती है, तब ही ध्याता, ध्यान और ध्येय के विकल्प समाप्त हो जाते हैं।**

कबीर के बेटे कमाल को घास काटकर लाने के लिये भेजा। शाम तक इंतजार करने पर भी कमाल नहीं आया, तो कबीर ने स्वयं खेत पर जाकर देखा। कमाल घास के पास खड़ा है और घास की तरह डौल रहा है। जब कबीर ने कमाल के कंधे पर हाथ रखकर कहा कि क्या कर रहे हो? तो वह बोला कि काटने वाला और कटने वाला ऐसे दो भेद ही मैं भूल गया था। **आत्मा की पर्याय भी आत्मद्रव्य में ऐसे स्थिर हो जाती है कि पर्याय एवं द्रव्य के विकल्परुप भेद ही समाप्त हो जाते हैं।** जब घी खीचड़ी में डलता है, फिर वह कहीं भी नहीं ढलता। क्योंकि घी ने उस खीचड़ी का आश्रय लिया, जो स्वयं नहीं डलती है। ऐसे ही अस्थिर पर्याय आत्मा की स्थिर आत्मा का आश्रय लेती है, तब पर्याय भी स्थिर हो जाती है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है।

जैसे घड़े को कुएँ के ऊपर बिलकुल ही मध्य में रस्सी से बांधकर लटकाया हो। जब रस्सी कट जाये, तो उसे नीचे कुएँ में गिरने के लिये कुछ करना नहीं पडता। ऐसे ही विकल्पों के बंधन से बंधे जीव को आत्मा में स्थिर होने के लिये कुछ करना नहीं है। चैतन्य के चिन्तन एवं तत्त्वविचार के बल

पर होने वाले अनन्तानुबंधी सम्बन्धी मंद विकल्प की रुचि न हो और चैतन्य का ही चिन्तन चलता है, तब आत्मा उन मंद विकल्पों से भी मुक्त हो जाता है और सहज ही निर्विकल्प आत्मानुभूति प्रकट होती है।

सुखी होना आत्मा का स्वभाव है। यदि आपको कोई पूछे कि आप कैसे है? आपने कहा कि आनन्द–मंगल। कोई यह नहीं पूछता कि आप आनन्द में क्यों हो? यदि आप कहे कि मैं दु:ख में हूँ, तो कोई पूछेगा कि दु:ख में क्यों हो? आनन्द–मंगलमय रहना आत्मा का स्वभाव है, परन्तु दु:ख में रहना आत्मा का स्वभाव नहीं है। स्वभाव में प्रश्न नहीं होते।

आपको कोई पूछे कि जन्म से लेकर आज तक हर एक रात को आप सोये हैं, आपको नींद कैसे आ जाती है, बताओ। कुछ लोग रात को ही नही, दिन में भी सोते हैं। अरे अज्ञानी तो दिन–रात सोते ही रहे हैं। आपके पास नींद आने की विधि का ज्ञान नहीं है, फिर भी आप सो जाते हैं। **थका व्यक्ति कहीं भी सो जाता है, ऐसे ही संसार परिभ्रमण से थका व्यक्ति ही निर्विकल्प आत्मानुभूति को उपलब्ध हो सकता है।**

सम्यग्दर्शन कब होगा ऐसे विकल्पों में उलझने से सम्यग्दर्शन दुर्लभ हो जाता है। समय से पहले कदापि नहीं होगा। सम्यग्दर्शन पर जोर होने से पर्यायद्रष्टि बनी रहती है, पर्यायद्रष्टि ही मिथ्यात्व का मूल है। याद रहे, जैसे गर्भवती महिला को नौ माह पूर्ण होने से पहले ही यदि पाँच माह में बच्चे को निकालना चाहे, तो वह बच्चा मरा हुआ निकलेगा। **काल से पहले कार्य नहीं होता है, अत: सम्यग्दर्शन की पर्याय को काललब्धि पर छोड दे और सदा ही द्रष्टि में आत्मद्रव्य का जोर बना रहे। सम्यग्दर्शन जब प्रकट होना हो तब हो, मैं तो त्रिकाल परिपूर्ण परमात्मा हूँ, ऐसा जब द्रष्टि में आया कि पर्याय में सहजरुप से सम्यग्दर्शन प्रकट हुआ। द्रव्यद्रष्टि ही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का एक मात्र उपाय है।**

जिस जीव की ऐसी भावना है कि अब तो मुझे भगवान होना है, उस जीव को अनन्त जन्म–मरण करने की भावना है। क्योंकि उसे भगवान होना

है। भगवान होने की पर्याय का उत्पाद होता है और व्यय भी होता है। पर्याय का स्वभाव ही उत्पाद–व्यय है। मुझे भगवान होना है, इतना भी पर्याय का जोर न हो, जागृति रहे कि **मैं त्रिकाल भगवान हूँ, हूँ और हूँ। ऐसी द्रव्यद्रष्टि के बल पर आत्मा पर्याय में भी परमात्मा हो जाता है।**

26. ज्ञानी ने आत्मा को जाना या आह्लादरुप आनन्द को?

वस्तु कभी वस्तु के पीछे नहीं खो जाती, बल्कि ज्ञान में से खो जाती है। चाबी हाथ में होने पर भी हम सारे घर में चाबी खोजते हैं। वास्तव में चाबी ज्ञान में से खो गई है। जब चाबी का ज्ञान होता है, तब हम कहते हैं कि चाबी मिल गई। ऐसे ही आत्मा हमारे ज्ञान में से खो गया है। **आत्मा को ज्ञान में जानना ही आत्मा को पाना है। आत्मानुभूति ही आत्मप्राप्ति है।**

जब आत्मा की अनुभूति होती है, तब आनन्द का सागर उछलता है। उछलने वाला आनन्द का सागर स्वयं पर्याय है। आत्मानुभूति के काल में आत्मद्रव्य जानने में आता है या आत्मा की पर्याय? हे भव्य! तू ज्ञान और द्रष्टि के भेद को जानेगा, तो इस रहस्य को समझ सकेगा।

आत्मा की पर्याय को द्रष्टि की प्रधानता से भिन्न कहा है, परन्तु सर्वथा भिन्न नहीं कहा है। अत: हे चैतन्य प्रभु! ज्ञानी के कथनो का यथार्थ आशय समझने का प्रयास करना चाहिए। आत्मानुभूति के काल में पर्याय में प्रकट होने वाला आनन्द सहजरुप से ज्ञान में जानने में आता है। ज्ञानी को उस आह्लाद स्वरुप आनन्द को जानने की रुचि नहीं है। उस आनन्द को ज्ञानी अपना स्वरुप नहीं मानते हैं। **आह्लाद स्वरुप आनन्द की पर्याय जानने में आने पर भी द्रष्टि का जोर चैतन्य ध्रुव तत्त्व पर ही होता है।**

जैसे केवली भगवान को लोकालोक को जानने की रुचि नहीं है, परन्तु लोकालोक सहजरुप से ज्ञान में जानने में आ जाते हैं। एकत्व के विषय की अपेक्षा से ऐसे समझना चाहिए कि द्रष्टि का विषय और ध्यान का ध्येय चैतन्य तत्त्व होने पर भी पर्याय में प्रकट होने वाली निर्मलता ज्ञान में जानने आ जाती है।

सुख की जो पर्याय उत्पन्न होती है, ज्ञानी को उस पर्याय की रुचि नहीं है। नित्य सुख स्वभावी आत्मा को छोडकर जन्म-मरणयुक्त अनित्य सुख पर्याय में एकत्व करना कौन चाहेगा? सागर को छोडकर गागर में अपनापन करना कौन चाहेगा? सिन्धु से द्रष्टि हटाकर बिन्दु को देखना कौन चाहेगा? समुन्द का ध्यान छोडकर बुन्द का ध्यान करना कौन चाहेगा?

आत्मानुभूति के काल में अनित्य पर्याय नित्य द्रव्य में ऐसी लीन होती है कि मैं ही नित्य द्रव्य हूँ। जब पर्याय द्रव्य में स्थिर होती है, तब पर्याय में सुख प्रकट होता है और जब पर्याय द्रव्य में स्थिर नहीं होती है, तब पर्याय में दु:ख उत्पन्न होता है। पर्याय मेरा लक्ष्य करे तो सुख और न करे तो दु:ख होता है। प्रतिसमय जागृति रहे कि मैं तो त्रिकाल सुख स्वरुप हूँ। भले ही पर्याय में सुख प्रकट हो, परन्तु द्रष्टि का जोर द्रव्य पर ही रहता है।

अहो! धन्य हैं वे जीव, जिन्हें यह बात सुहाती है कि द्रष्टि के विषय में परद्रव्य ही नहीं, बल्कि पर्याय भी शामिल नहीं है। ज्ञायक भाव अप्रमत्त भी नहीं है और प्रमत्त भी नहीं है। ज्ञान का विषय और द्रष्टि का विषय भिन्न है। इन दोनों के बीच भेद जाने, तो सच ही सारा विवाद ही विराम को प्राप्त हो जाये।

ज्ञानी के प्रत्येक वचन में नयविवक्षा होती है। आत्मा की पर्याय को आत्मा से कथंचित् भिन्न कहा है, परन्तु आत्मा को पर्याय रहित नहीं कहा है। पर्याय में राग होने पर भी स्वयं को राग रहित मानना निश्चयाभास है। पर्याय में राग होने पर भी स्वयं को राग से भिन्न मानना धर्म है। रहित शब्द का प्रयोग पर्याय के लिये और भिन्न शब्द का प्रयोग द्रव्य स्वभाव के लिये होता है। सर्व रागी जीव राग से भिन्न हैं, परन्तु राग रहित नहीं। वीतरागी भगवान राग रहित हैं। स्वयं को राग से भिन्न चैतन्य तत्त्व मानने पर राग रहित दशा प्रकट होती है।

जैसे सोने की अंगुठी जानने में आने पर भी सोने की रुचि वाले जीव की द्रष्टि में सोना ही होता है। ऐसे ही आह्लाद स्वरुप आनन्द की पर्याय जानने में आने पर भी ज्ञानी को आत्मद्रव्य ही द्रष्टि में होता है। यहाँ द्रष्टि शब्द का अर्थ आँखो से देखना, ऐसा मत समझना। द्रष्टि अर्थात् श्रद्धा। **आह्लाद स्वरुप आनन्द जानने में आता है, तब भी ज्ञानी की द्रष्टि आत्मद्रव्य पर होती है अर्थात् ज्ञानी को आत्मद्रव्य में एकत्व होता है, अपनापन होता है।**

27. चैतन्य के शिखर पर

चैतन्य तत्त्व की अनुभूति होते ही आत्मा पर्वत के सर्वोच्च चैतन्य तत्त्व की निर्विकल्प अनुभूतिरुपी शिखर को छू लेता है, जिसके उपर कुछ भी नहीं। चैतन्य तत्त्व की निर्विकल्प अनुभूतिरुपी शिखर से अब तो कहीं भी गति हुई कि समझो, पतन ही हुआ।

पर्वत के शिखर पर पहुँचने के बाद कहीं भी कदम आगे बढ़ाया, तो गिरना ही होगा। **चैतन्य के शिखर की अनुभूति छूटते ही विकल्पों में ही पतन होगा, फिर वह अशुभ हो या शुभ।** शिखर के चारों ओर ढलान ही ढलान है। जैसे ही त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा से उपयोग हटा कि विकल्प की खाई में गिरा। पर्वत के उस शिखर पर होने वाली निरंतर नित्य आत्मानुभूति का फल यह है कि आत्मा अनन्त काल तक लोकाग्र शिखर पर सिद्धशिला पर विराजमान होता है।

जिसने स्वयं को पर्याय से भिन्न चैतन्यतत्त्व नहीं जाना, वह जगत के किसी भी अन्य जीव को पर्याय से भिन्न भगवान आत्मा कैसे जान सकता है? क्योंकि जगत के जीवों को भगवान आत्मा जानना तो व्यवहार है। ऐसा व्यवहार तो तब प्रकट होता है, जब मैं भगवान आत्मा हूँ, ऐसा जाननेरुप निश्चय प्रकट हुआ हो। **ज्ञानी ने स्वयं को परमात्मा जाना है, माना है, अनुभव**

किया है, इसलिये ज्ञानी जगत में प्रत्येक आत्मा को परमात्मा के रुप में देखते हैं। इतना ही नहीं, ज्ञानी को ही जिनेन्द्र भगवान की अचेतन प्रतिमा में परमात्मा के दर्शन होते हैं, अज्ञानी को नहीं। जब आत्मा स्वतंत्र अनुभव में आता है, तब जगत का प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है, ऐसी यथार्थ श्रद्धा होती है।

अन्दर से बाहर प्रकट होता है, वही वास्तविक है, प्राकृतिक है, अन्य सब कुछ बनावटी है, कृत्रिम है। गुलाब का प्राकृतिक फूल में से जो सुगंध आती है, वह अन्दर से बाहर आती है, जबकि प्लास्टीक के फूल में बाहर से अत्तर छिडककर खुशबुदार बनाने में बनावट है। प्रतीति सम्यक्त्व होने पर ही परिणति में निर्मलता प्रकट होती है।

देहाधीन द्रष्टी अज्ञानी को चमडे की आँखों से जगत में कोई हिन्दु, कोई मुस्लिम, कोई ईसाई दिखाई देते हैं। **ज्ञानी को ज्ञानचक्षु से चैतन्य का मैला दिखता है। ज्ञानी को तो जहाँ देखे वहाँ चैतन्य स्वभावी भगवान आत्मा ही दिखाई देता है। अरे! पर्यायद्रष्टि वाले जीवों को भी परमात्मा के रुप में देखना द्रव्यद्रष्टि है। क्योंकि सिद्ध और संसारी के बीच समय का फासला है, स्वभाव का नहीं।**

पुर अर्थात् नगर। नगर में वास करने वाला पुरुष है। देहरुपी नगर का वासी भगवान आत्मा पुरुष है। अध्यात्म में पुल्लिंग मनुष्यों को ही पुरुष नहीं कहा है। आत्मा की ज्ञान शक्ति आत्मा को जाने, माने और आत्मा में स्थिर हो यही पुरुषार्थ है।

कोई व्यक्ति माँस खाता है, वह उसकी चारित्र सम्बन्धी कमजोरी है। परन्तु उसे भी परमात्मा के रुप में न देखकर, माँस खाने वाला पापी मानना, स्वयं की श्रद्धा सम्बन्धी कमजोरी है। **हे चैतन्य प्रभु! पुरुषार्थ स्वयं में घटित होता है।**

द्रष्टि में अहंकार होने के कारण अज्ञानी को यह प्रश्न हो सकता है कि जिसप्रकार शिखर पर पहुँचने के बाद व्यक्ति को अहंकार आ जाता है, उसीप्रकार जिस जीव को ऐसी अनुभूति हुई कि मैं चैतन्य स्वभावी परमात्मा

हूँ, उसे परमात्मपने की अनुभूति होने से अहंकार नहीं आ सकता? नहीं कदापि नहीं। आत्मानुभूति के शिखर को छूने वाला आत्मा जगत में प्रत्येक आत्मा को परमात्म द्रष्टि से ही देखता है।

हमें जगत में वह नहीं दिखता है, जो होता है। बल्कि हमें वह दिखता है, जो हमारी द्रष्टि में होता है। मिथ्यात्व की अवस्था में द्रष्टि में देह एवं रागादि भाव होने से जगत में सभी आत्मा देह एवं रागादि भावरुप दिखाई देते हैं। सम्यक्त्व की अवस्था में द्रष्टि में चैतन्य परमात्मा होने से जगत में सभी जीव चैतन्य परमात्मा के रुप में दिखाई देते हैं, अत: स्वयं में परमात्मपने की अनुभूति होने से अहंकार उत्पन्न होने की सम्भावना ही नहीं रहती। **कमजोर व्यक्ति ज्ञानी की कमजोरी को और पुरुषार्थी जीव ज्ञानी के पुरुषार्थ की ओर द्रष्टि करता है।**

28. भेदज्ञान की ज्योति

आत्मा में उत्पन्न होने वाले राग-द्वेष के भावों का चैतन्य तत्त्व में कहीं भी प्रवेश नहीं होता है। जब यह सत्य श्रद्धान में स्थापित होता है, तब जीव सदा के लिये निश्चिंत हो जाता है।

आत्मा और देह के बीच भेदज्ञान प्रकट होने पर प्रत्येक आत्मा देह से भिन्न सिद्ध भगवान और प्रत्येक देह आत्मा से भिन्न मुर्दा दिखाई देता है। जब आप रास्ते में किसी मरे हुये प्राणी का शरीर देखते हैं, तब तुरन्त ही वहाँ से नजर हटा लेते हैं। क्योंकि वहाँ द्रष्टि केन्द्रित करने जैसा लगता ही नहीं है। प्रत्येक देह को आत्मा से रहित मुर्दा देखने पर देह की ओर द्रष्टि जाती ही नहीं।

रास्ते पर दस मीटर की दूरी पर एकसाथ दो मोटरगाडियाँ दस किलोमीटर प्रतिघण्टे की रफ्तार से चलती हो, तो भी दोनों चालकों जागृति रखनी पडती हैं। क्योंकि अकस्मात होने की सम्भावनायें बहुत है। परन्तु दो

अलग–अलग पटरी पर दो मीटर की दूरी पर एकसाथ दो रेलगाडियाँ सौ किलोमीटर प्रतिघण्टे की रफ्तार से चलती हो, तो भी दोनों चालक निश्चिंत हैं। क्योंकि उन्हें द्रढ विश्वास है कि दोनों रेलगाडियाँ अपनी–अपनी मर्यादा छोडने वाली नहीं है। ऐसे ही ज्ञानी को प्रतिसमय जागृति रहती है कि एक पटरी पर जानना–जानना हो रहा है और दूसरी पटरी पर विकल्प–विकल्प हो रहे हैं। उन्हें यह प्रतीति है कि कभी–भी चैतन्य तत्त्व का विकल्प में और विकल्प का चैतन्य तत्त्व में मिलना होता ही नहीं, हो सकता ही नहीं। ऐसी भेदविज्ञान की रेखा खींचने पर अपूर्व धर्म प्रकट होता है।

ज्ञानी को प्रतिसमय जागृति रहती है, प्रत्येक ज्ञेय को जानते समय मैं चैतन्य स्वरुप हूँ, पर की सत्ता को जानते समय भी स्वयं की सत्ता बोध निरंतर रहता है। जैसे रमेश ने अध्यापक के पास जाकर शिकायत कर दी कि मेरा दोस्त सुरेश कल रात को नौ बजे से लेकर बारह बजे तक सिनेमाग्रह में पहली कतार की तीसरी कुर्सी पर बैठकर सिनेमा देख रहा था। अध्यापक ने रमेश को पूछा कि ये सब तुमने कैसे जाना? बस, सुरेश की सत्ता को सिद्ध करने गये और स्वयं की सत्ता ही सिद्ध हो गई। अत: याद रहे, अन्य द्रव्य की सत्ता की सिद्धि, सिर्फ अन्य द्रव्य की सत्ता की ही नहीं, बल्कि स्वयं की चैतन्य सत्ता को भी सिद्ध करती है। देह को जानते समय देह को जानने वाले आत्मा की सिद्धि होती है, मित्र को जानने समय मित्र को जानने वाले आत्मा की आत्मा की सिद्धि होती है, आदि...।

जैसे प्रवचन सुनते समय या शास्त्र पढ़ते समय अज्ञानी का ध्यान अनेक बार पत्नी में या पुत्र में चला जाता है, ऐसे ही व्यापारादि करते समय, पत्नी को देखते समय भी ज्ञानी का ध्यान आत्मा में चला जाता है। अज्ञानी जगत को मात्र बाह्य क्रियायें दिखाई देती हैं, परन्तु आत्मा की अंतरंग परिणति नहीं।

हम और आप कभी मिले ही नहीं है और मिल सकते भी नहीं है। मिलने का जो आभास होता है, वह आभास चमडे की आँखों से देखने की वजह से ही होता है। व्यावहारिक भाषा में ऐसा कह सकते हैं कि उदय का

उदय के साथ मिलन होता है। जो आत्मा स्वयं के कर्मोदय से नहीं मिला है, वह दूसरे आत्मा से कैसे मिल सकता है?

ज्ञानी को जब भूख लगे और भोजन करने का विकल्प उठे तो जागृति रहती है कि यह देह पड़ौसी है। यदि पड़ौसी के घर में आग लगती है, तो आप आग बुझाने के लिये जाते हो कि कहीं वह आग अपने घर में न लगे। ऐसे ही देह में लगने वाली भूख आग को दो रोटियाँ पेट में डालकर बुझा देते हैं कि जिससे आत्मा में तीव्र विकल्पों की आग न लगे। हाँ, कोई व्यक्ति पड़ौसी के लिये विषयभोग इकट्ठे करने में अपने जीवन को व्यर्थ में गंवाता नहीं है। बस, इसलिये ज्ञानी इस देह को परिवारजन भी नहीं मानते और शत्रु भी नहीं मानते। वे देह को मात्र पड़ौसी मानते हैं।

शास्त्रों में नरक की मार–काट का वर्णन करने का मूल प्रयोजन जीवों में भय उत्पन्न कराना नहीं है। क्या जीव यहाँ की वेदना से पहले से ही कम भयभीत है कि उसे नरक की भूख–प्यास, सर्दी–गर्मी का वर्णन सुनाना पडे? रहस्यपूर्ण बात तो यह है कि वहाँ नारकी आपस में लडकर देह के तिल–तिल जितने टुकडे कर देते हैं, देह के तिल–तिल जितने टुकडे होने पर भी चैतन्य तत्त्व के टुकडे नहीं हुये। मैं ऐसा अनादि–अनन्त अखंड एक महान चैतन्य तत्त्व हूँ।

बैठे थे, उठने गये कि एक नया महंगा कुर्ता फट गया, तत्क्षण जागृति रहे कि मैं नहीं फट गया। यदि मैं फट जाता, तो फटा कुर्ता जानने में आता कैसे? स्वाध्याय करके उठे कि वमन में खून निकला। भले ही शरीर में से इतना खून निकल गया। परन्तु मेरा कुछ भी नहीं गया। शरीर में से खून निकला, उस खून को जाना किसने? जानने वाला ज्ञान आत्मा में से नहीं निकल गया। खून बहे तो बहे, मेरा कुछ भी नहीं बहा। यदि चैतन्य बह जाता, तो बहने वाले खून को जानता कौन? इस शरीर के परमाणु कुछ ही दिनों में बिखर जाने वाले हैं। हे चैतन्य परमात्मा! देह के परमाणु बिखर जाये, तो भले ही बिखर जाये, मैं चैतन्य तत्त्व त्रिकाल टिककर रहने वाला हूँ। चैतन्य स्वभावी मंगलसूत्र के अतिरिक्त जगत में मेरा है ही क्या? कुछ भी तो नहीं।

अज्ञानी के बारे में यह कहना आसान है कि वह कल क्या करेगा? ज्ञानी के बारे में यह कहना अति कठिन है कि वे कल क्या करेंगे? आज यहाँ, तो कल कहाँ? आज भवन में, तो कल वन-उपवन में!

सम्यग्द्रष्टी चक्रवर्ती का छह खण्डों के वैभव से भी निरंतर भेदज्ञान वर्तता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम छह खण्डों को जीतने के लिये प्रयाण करे और जीत होने के बाद भेदज्ञान करे। हे भव्य! प्रत्येक जीव को अपनी-अपनी भूमिकानुसार भेदज्ञान वर्तता है। चक्रवर्ती और आचार्य की भूमिका अलग है, आपकी और मेरी भूमिका अलग है। हम वर्तमान में जिन संयोगो और संयोगी भावों से युक्त हो, उनके स्वभाव और स्वयं के स्वभाव के बीच भेदज्ञान चलता रहे। जैसे कोई व्यक्ति बुलेट-प्रुफ गाड़ी में सफर कर रहा हो और रास्ते पर शत्रुओं की भीड पत्थर भी फेंके, फिर भी वह व्यक्ति निश्चिंत ही रहता है। ऐसे ही **ज्ञानी को बाह्य में किसी भी संयोग एवं संयोगीभावो की उत्पत्ति के समय यह जागृति रहती है कि मैं स्वयं सुरक्षित चैतन्य तत्त्व ही हूँ।**

29. विकल्प होने पर भी विकल्पातीत

जैसे नारियल का गोला नारियल में रहकर भी नारियल से अलग हो जाता है, ऐसे ही ज्ञानी का आत्मा देह में रहकर भी देह से अलग होता है। जैसे नारियल को जमीन पर रगड़ने से नारियल का गोला नारियल से अलग नहीं होता है। ऐसे ही बाह्य क्रियाकांड से आत्मा देह से अलग नहीं होता है। जैसे गोले में से पानी सूख जाने पर गोला नारियल में रहकर भी सहज ही अलग हो जाता है। ऐसे ही **आत्मा में से मिथ्यात्व का रस सूख जाने पर ज्ञानी धर्मात्मा देह में रहकर भी देहातीत हो जाते हैं, देह होने पर भी ज्ञानी की दशा देहातीत वर्तती है।**

जैसे कमरे की दीवारों को रंगने से कमरा प्रकाशित नहीं हो जाता। ऐसे ही बाह्य क्रियाकांड से आत्मा प्रकाशित नहीं हो जाता, आत्मा परमात्मा नहीं हो जाता। क्रिया में भाव न हो, प्राण न हो, तो उसे अधर्म ही कहते हैं, अधिक क्या कहे? शरीर में से प्राण निकल जाने पर उसे जला दिया जाता है। आज जो मुर्दा है, वह कभी जिन्दा था, ऐसे ही आज का सद्व्यवहार भूतकाल में अंतरंग परिणति की निर्मलता के कारण ज्ञानियों का व्यवहार कहा जाता था। प्रत्यक्ष सद्गुरु से शिष्य के अहंकार को गहरी चोट लगती है। प्रत्यक्ष सद्गुरु के सत्संग को पचाने के लिये लोहे के चने चबाने जैसा बल चाहिए। **हे चैतन्य परमात्मा! द्रष्टि की मुख्यता से देखने पर ज्ञानी देह होने पर देहातीत ही नहीं, विकल्प होने पर भी विकल्पातीत दशा को प्राप्त हुये हैं, ऐसे सद्गुरु का सत्संग पाकर भी आत्मानुभूति न हुई, तो समझो, सागर में रहकर भी मछली प्यासी ही रह गई।**

गुरु वे हैं, जिनमें कुछ तो भगवान जैसा प्रकट हुआ है और कुछ तो शिष्य जैसा बाकी बचा है। गुरु के शिष्य अतीत है और भगवान भविष्य। याद रहे, मोक्षमार्ग पर देखकर चलने के लिये गुरु का ज्ञानरुपी दीपक तो सहायक हो सकता है, परन्तु गुरु की द्रष्टि और चारित्र नहीं। पराई आँखो से देख नहीं सकते और पराये पैरों से हम चल नहीं सकते। द्रष्टि और आचरण स्वयं का चाहिए। धन्य है वे जीव, जिन्हें स्वर्ग के सुख का प्रलोभन न मिलने पर भी सद्गुरु के मुख से आत्मा की चर्चा सुहाती है।

हे भव्य! तू चैतन्य तत्त्व को ही अपना स्वरुप मान। हे जीव! तू पढ़ने–सुनने वाले इन्द्रियज्ञान को भी अपना स्वरुप मत मान। जब ज्ञानी कहते हैं कि अब आप प्रवचन न सुने और सुने हुये प्रवचनों को भी भूल जाना, तब ज्ञानी के कथन का आशय समझना। ज्ञानी ने जो गाथायें आपको याद है, उन्हें भूलने का उपदेश नहीं दिया है। वहाँ आशय यह है कि इन्द्रिय से ज्ञान होता ही नहीं है, इन्द्रियों से द्रष्टि हटकर चैतन्य स्वभाव पर स्थापित हो, इस आशय से सुने हुये प्रवचनों को भूल जाने का उपदेश दिया था। जिस जीव को इस जीते–जागते साक्षात् समयसार स्वरुप चैतन्य तत्त्व की महिमा

आये, उसी जीव ने यथार्थरुप से समयसार को पढ़ा है। ज्ञानी ने द्रव्यश्रुत की रचना की, उन्होंने अंतरंग में साक्षात् समयसार को जाना, अनुभव किया। साथ ही सभी जीवों में वही परमात्म स्वरुप जाना, तब अक्षरों से समुदायरुप समयसार की रचना की।

उंगली कट जाने पर ज्ञानी को भी दु:ख होता है। परन्तु वे दु:ख की पर्याय को भी उंगली की तरह ज्ञान का ज्ञेय जानते हैं। वे मानते हैं कि जैसे उंगली का ज्ञान में प्रवेश नहीं होता है, ऐसे ही दु:ख का भी ज्ञान में प्रवेश नहीं होता है। अज्ञानी सोचता है कि मुझे दु:खी नहीं होना है, मुझे दु:खी नहीं होना है। ऐसे विकल्पों से तो कर्तृत्वबुद्धि का बोझ बढ़ता है। दु:ख का बोझ बढ़ता है।

जैसे अपने घर में मेहमान की उपस्थिति होने पर भी आप अपने कार्य में व्यस्त रहकर मेहमान की ओर ध्यान न दे, तो मेहमान सहज ही घर से चले जाते हैं। ऐसे ही **चैतन्य स्वभावी भगवान आत्मा में एकाग्र होकर ध्यानमग्न रहने पर रागादि भावरुपी मेहमान सहज ही दूर हो जाते हैं। जहाँ-जहाँ ज्ञेय जाने, वहाँ-वहाँ ज्ञान ही जानने में आये, फिर किस पर राग करे और किस पर द्वेष?** सब्जी में खारापन है, वह नमक ही है। नमक अपने में है और सब्जी अपने में है। ऐसे ही ज्ञान अपने में है और ज्ञेय अपने में है। चैतन्य तत्त्व की जागृति के बल ज्ञानी स्वयं को चैतन्य स्वरुप ही मानते है, रागादि विकल्परुप नहीं।

30. द्रव्य का अनुभूति की पर्याय में भी प्रवेश नहीं

आत्मानुभूति के काल में भगवान आत्मा पर्याय में अनुभव में तो आता है, परन्तु आत्मद्रव्य का अनुभूति की पर्याय में भी प्रवेश नहीं हो जाता। आत्मद्रव्य स्वज्ञेय है, जब स्वज्ञेय का भी ज्ञान की पर्याय में प्रवेश नहीं होता, तब परज्ञेय का तो कहना ही क्या? मैं चैतन्य परमात्मा निराला ही हूँ। आत्मा की पर्याय में आत्मा अनुभव में आता है, परन्तु पर्याय में नहीं आता है। इस गहन रहस्य को समझने पर ही द्रष्टि का विषयभूत भगवान आत्मा समझ में आ सकता है।

ज्ञान में राग जानने में आता है, फिर भी अचेतन राग चेतन नहीं हो जाता और चेतन ज्ञान अचेतन नहीं हो जाता। इसलिये ज्ञानी कहते हैं कि ज्ञान अत्यंत दूर से राग को जानता है। ऐसे ही एक समय की पर्याय में द्रव्य अनुभव में आता है, लेकिन एक समय की पर्याय में द्रव्य आता नहीं है। विचार करो! अनुभव के काल में यह त्रिकाली ध्रुव ज्ञायक भगवान जो अनुभव में आता है, वह भगवान आत्मा उस पर्याय का उस समय जो विषय है, वह स्वज्ञेय है। स्वज्ञेय जब अनुभव में आता है, वह स्वज्ञेय भी जानने वाली पर्याय में प्रविष्ट नहीं होता। जब **आत्मा की पर्याय में भी परज्ञेय या स्वज्ञेय का प्रवेश नहीं हो सकता, तब आत्मद्रव्य में परद्रव्य एवं परभाव का प्रवेश कैसे हो सकता है?**

हे चैतन्य परमात्मा! यह जागृति रहे कि सारा जगत यहाँ ज्ञायक में कहीं भी नहीं है। पर्याय तो प्रतिसमय पलटती ही है, लेकिन जिस समय पर्याय में अनुभव हुआ कि मैं त्रिकाली ध्रुव आत्मा, इस अपेक्षा से पर्याय और द्रव्य अभेद हुये, ऐसा कहा जाता है। जैसे जीभ पर रखे गये रसगुल्ले को जीभ चखती है, परन्तु रसगुल्ला जीभ में प्रविष्ट नहीं हो जाता। ऐसे ही **आत्मा पर्याय में अनुभव में तो आता है, परन्तु पर्याय में प्रविष्ट नहीं हो जाता।**

जैसे जीभ रसगुल्ले को चखती है, तब रसगुल्ला द्रष्टि में होता है, जीभ नहीं। ऐसे ही **जब पर्याय में द्रव्य अनुभव में आता है, तब पर्याय को पर्याय में एकत्व नहीं होता, बल्कि द्रव्य का एकत्वपूर्वक अनुभव होता है।**

31. आत्मानुभव ही प्रमाण

स्वानुभव से महान अन्य कोई दूसरा प्रमाण नहीं है। अज्ञान अवस्था में अज्ञानी को देव की श्रद्धा होती है या कुल परम्परा होती है? शास्त्र की श्रद्धा होती है या कुल परम्परा होती है? गुरु की श्रद्धा होती है या कुल परम्परा होती है? देव–शास्त्र–गुरु की श्रद्धा को व्यवहार से सम्यग्दर्शन कहा है। निश्चय सम्यग्दर्शन के बिना व्यवहार सम्यग्दर्शन होता ही नहीं। अत: याद रहे, आत्मानुभूति से पहले देव–शास्त्र–गुरु के प्रति जो हमारी श्रद्धा है, वह श्रद्धा यथार्थ नहीं है।

सच्चे देव–शास्त्र–गुरु की यथार्थ श्रद्धा का नाम गृहित मिथ्यात्व का छूटना कहा गया है। **वास्तव में जिस समय अगृहित मिथ्यात्व छूटता है, उसी समय गृहित मिथ्यात्व छूटता है। क्योंकि निश्चय सम्यग्दर्शन प्रकट होने पर ही व्यवहार सम्यग्दर्शन होता है।**

अत: सच्चे देव–शास्त्र–गुरु की प्रार्थना–पूजा–भक्ति आदि करना परन्तु आत्मानुभूति से पहले उन्हें व्यवहार सम्यग्दर्शन मत मान लेना। क्योंकि वैसी दशा प्रकट होने से पूर्व ही हम स्वयं को ऐसी दशा वाले मान लेते हैं, तब मुमुक्षु का आत्मिक विकास रुक जाता है।

हे चैतन्य परमात्मा! मात्र शास्त्र जानने से आत्मा जानने में नहीं आता, बल्कि आत्मा को जानने पर सभी शास्त्र एवं उनके रहस्य जानने में आ जाते हैं। शास्त्र में पढ़कर मैं चैतन्य स्वभावी भगवान आत्मा हूँ, ऐसा कहना भले ही सत्य है, लेकिन यह शास्त्र की यथार्थ श्रद्धा नहीं है, क्योंकि

ऐसा कहने में स्वयं का कोई अनुभव नहीं है। अनुभव से पहले सिर्फ शास्त्र का पढ़ना होता है और कुछ भी नहीं। मोक्षमार्ग की जानकारी होती है, समझ नहीं। श्रद्धा सहित ज्ञान ही समझ है। इसलिये ज्ञानी कहते हैं कि अनुभव प्रमाण से स्वीकार करना।

सुबह हम कोई बात किसी को कहते हैं और साथ में यह भी कहते हैं कि आगे कह देना। जब वह बात सारे समाज में घूमकर शाम को हमारे पास पहुँचती है, तब हमें भरोसा भी नहीं होता कि ऐसा हमने सुबह कहा था। जो बात शास्त्रों में लिखी है, उसे किसी के कहने पर मत मान लेना। मैं आपको शास्त्र पर शंका करने के लिये नहीं कह रहा हूँ। मैं यह कहना चाहता हूँ कि स्वयं के अनुभव प्रमाण से स्वीकार करना, मात्र कुल परम्परा के कारण नहीं।

जब यहाँ अंतरंग में राग से न्यारा निज भगवान आत्मा अनुभव में आया, तभी यह श्रद्धा हुई कि समस्त रागादि भाव रहित अरिहंत एवं सिद्ध भगवान होते हैं। निश्चय प्रकट होते ही व्यवहार प्रकट हुआ। आत्मा में भाव हो, तो शास्त्रों के शब्दों में से अर्थ निकलते हैं, वरन् शास्त्र पढ़ना अखबार पढ़ने जैसा ही है। हम उस व्यक्ति पर हंसते हैं, जो अपने पड़ौसी के घर में आग लगने की जानकारी अखबार पढ़कर प्राप्त करता हो। परन्तु अपने बारे जरा सोचो! हमें स्वयं की चैतन्य सत्ता का ज्ञान शास्त्र पढ़कर होता है कि मैं चैतन्य मात्र सत्ता स्वरुप द्रव्य हूँ। शास्त्र तो सिर्फ माध्यम है। याद रहे, आत्मानुभव से बडा कोई प्रमाण नहीं है।

हमें कभी–भी व्यक्ति विशेष में न जाकर वस्तु स्वरुप के सन्मुख जाकर सत्य को समझने का प्रयास करना चाहिए। **शास्त्रों के शब्दों को या देव–गुरु की वाणी का स्वयं के अनुभव से मिलान करना चाहिए।** याद रहे, व्यक्ति के कर्म के उदय आ सकते हैं। व्यक्ति का पतन दिखाई दे सकता है। मात्र व्यक्ति की श्रद्धा के बल पर किसी भी सत्य का स्वीकार किया, तो व्यक्ति का पतन होने पर सत्य की श्रद्धा का भी पतन हो जायेगा। अत: **प्रत्येक साधक को गुरु व्यक्ति पर नहीं, गुरु तत्त्व पर जोर देना चाहिए।**

भगवान आत्मा जगत में परम सत्य है। सत्य कभी मुफ्त नहीं मिलता, सत्य को पाने के लिये प्राणों की कुर्बानी देने का साहस होना चाहिये। याद रहे, वस्तु या क्षयोपशम ज्ञान का आदान–प्रदान हो सकता है, चैतन्य स्वभावी भगवान आत्मा के अनुभव का नहीं। हे भगवान आत्मा! मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि **भगवान आत्मा की अनुभूति आपको अभी और यहाँ हो सकती है, स्वयं को हीन मत मानो।** बस, शांत चित्त होकर तत्त्वविचार करो और स्वयं के अनुभव प्रमाण से शास्त्र के वचनों को स्वीकार करो।

32. समाधि ही समाधान

जब शंका लेकर सद्गुरु के पास शिष्य भाव से भीग कर जाता है, तब उसे निश्चितरुप से समाधान उपलब्ध होता है। कोरी किताब में प्रश्न लिखकर जाना और सद्गुरु का संग पाकर किताब में उत्तर लिखकर आने का नाम समाधान नहीं है। सद्गुरु का योग पाकर शंका से शंकातीत होना ही समाधान है। जैसे पत्थर से भगवान प्रतिमा बनती है, तब पत्थर पर कुछ जोडना नहीं पडता है, बल्कि छैनी और हथौडी से अप्रयोजनभूत पत्थर हट जाने पर भगवान की प्रतिमा प्रकट होती है। सत्संग के फल में शिष्य की शंका ही गिर जाती है। **समाधि ही समाधान है।** meditation **ही** medicine **है। ध्यान ही औषधि है। विकल्प होना ही शंका है और निर्विकल्प होना ही समाधान है।**

एक स्थान पर पैर के उपर पैर और हाथ के उपर हाथ रखकर, आँखे बन्द कर बैठ जाना और मैं आत्मा हूँ, मैं आत्मा हूँ, ऐसा विचार करने का नाम समाधि नहीं है। तत्त्वविचार एवं आत्मचिंतन के फल सहज निर्विकल्प आत्मानुभूति प्रकट होती है, वह समाधि है। **याद रहे, विकल्पातीत होना समाधि है, शंकातीत होना समाधान है।**

भेदज्ञानरुपी प्रज्ञाछैनी से साधक शंका से मुक्त होकर शंकातीत होता है। शंकातीत होना आत्मा का स्वभाव है, शंका आत्मा का विभाव है। स्वभाव प्रकट होने पर विभाव दूर हो जात है। स्वभाव होने पर विभाव टिक नहीं सकता। प्रकाश आने पर अंधकार टिक नहीं सकता। ज्ञानी के वचन पर विचार करने से ही रहस्य का उद्घाटन होता है। तत्त्वविचार ही प्रायोगिक साधना है।

अर्जुन ने युद्ध के मैदान में सुने हुये प्रवचनों के नोट्स नहीं बनाये थे, सच तो यह है कि जिसके पास अधिक समय नहीं होता और जो प्रयोग करना चाहता है, वह कभी नोट्स नहीं बनाता है। मृत्यु की घड़ी में प्रत्यक्ष सद्गुरु का योग पाकर भी नोट्स बनाते रहोगे, तो प्रयोग कब करोगे? हे भव्य! **सद्गुरु का योग पुण्योदय से और धर्म का प्रयोग पुरुषार्थ से होता है।**

जब ज्ञानी चैतन्य गगन में मगन नहीं रह सकते हैं, तब उन्हें आध्यात्मिक साधना के पिपासु साधकों को सत्य की राह दिखाने का विकल्प आता है। **आत्मा का अनुभव हो या पुद्गल का अनुभव हो, अनुभव वाणी में व्यक्त नहीं हो सकता। अनुभव आत्मा का स्वभाव है, वाणी स्वयं पुद्गल है। जैसे मौन को वाणी से व्यक्त नहीं किया जा सकता, ऐसे ही आत्मानुभूति को वाणी से व्यक्त नहीं किया जा सकता।** फिर भी जगत के जीवों के प्रति करुणाभाव से ज्ञानियों को उस विषय के सम्बन्ध में कुछ कहने के भाव अवश्य आते है, जिनके कारण आज तक जीव आत्मानुभूति तक पहुँच नहीं सका है। जैसे बिमार व्यक्ति की बिमारी का उपचार करने से वैद्य बिमार नहीं हो जाते, ऐसे ही अज्ञानी को अज्ञान दूर करने का उपदेश देने से ज्ञानी, अज्ञानी नहीं हो जाते।

जैसे घोसले में विश्राम करके पंखी सुबह होते ही आकाश में उड़ता है। ऐसे ही सद्गुरु का योग सदा ही नहीं मिलता है। वे तो स्वयं की अनन्त की यात्रा की ओर प्रयाण कर जाते हैं। ज्ञानी को आकाश और घोसले के भेद की जागृति बनी ही रहती है। उन्हें सदैव जागृति रहती है कि शुभराग धर्म नहीं है। शुभभाव बंधन है और शुद्धभाव मुक्ति है। ज्ञानी को शुभभाव का लोभ नहीं होता, अत: पुण्यबंध का भी लोभ नहीं होता। जिन्हें स्वर्ग के सुख

का लोभ होता है, उन्हें पुण्यबंध का और पुण्यबंध के हेतु शुभभाव का लोभ होता है। **पुण्य के लोभी को प्राय: पाप के कांटे चुभते हैं। गुलाब का फूल पाने की लालसा के वशीभूत व्यक्ति को प्राय: कांटे ही चुभते हैं।**

ज्ञानी का बाह्य जीवन अज्ञानी जैसा प्रतीत होने पर भी अज्ञानी और ज्ञानी की अंतरंग परिणति में बुनियादी भेद होता है। जैसे जलते हुये और न जलते हुये दीये का वजन एक–सा होता है। आँख वाला पुरुष ही उन दोनों के बीच भेद जान सकता है, अंधा नहीं। ऐसे ही ज्ञानी और अज्ञानी की बाह्य क्रिया एक–सी होती है। ज्ञानी ही ज्ञानी की ज्योति को देख सकते हैं। ज्ञानी के पास यह अनुभव है कि, **संभोग से समाधि तक नहीं, बल्कि सम्यक्त्व से समाधि तक पहुँचा जाता है। आग को बुझाने के लिये घी नहीं, बल्कि पानी चाहिए।**

पाँच इन्द्रियों के विषयभोग की बात तो अत्यंत दूर, क्या आपको कभी ऐसा लगता है कि वीतरागी भगवान की पूजा करने का भाव हिंसा है? चूंकि यह भाव चारित्र सम्बन्धी कमजोरी है, परन्तु इस भाव को हिंसा न मानना और धर्म मानना, श्रद्धा सम्बन्धी कमजोरी है, इसी का नाम मिथ्यात्व है। अपनी स्त्री को छूने में इतना बडा पाप नहीं है, जितना बडा पाप यह मानने में है कि मैं ज्ञायक राग को छूता हूँ। चारित्र की अपेक्षा श्रद्धा सम्बन्धी कमजोरी अधिक खतरनाक होती है।

हे चैतन्य परमात्मा! काल निरंतर बह रहा है, बहते काल में अब एक क्षण भी पति–पत्नी, पुत्र–पुत्री, माता–पिता, मित्र–शत्रु की भावनाओं में भावुक होकर बहने की आवश्यकता नहीं है। बुढापा आयेगा तो काले बाल अपने–आप सफेद हो जायेंगे, परंतु काले मन का क्या करोगे? चैतन्य स्वभाव का आश्रय लिये बिना पर्याय की कालिमा मौत आने पर भी नहीं मिटती। निराश होने की आवश्यकता नहीं है। हे चैतन्य परमात्मा! पुरुषार्थ बलवान है।

निरंतर भेदज्ञान और आत्मजागृति बनी रहे। शरीर, मकान, गाड़ी, धन आदि पदार्थ अनेक परमाणुओं का संयोजन होने से उन पदार्थो के खंड–खंड

होकर विसंयोजन होता ही है। चैतन्य स्वभावी भगवान आत्मा का संयोजन नहीं हुआ, अतः विसंयोजन भी नहीं होता। मैं अनादि–अनंत एक हूँ। भगवान आत्मा का प्रत्येक प्रदेश ज्ञानरस से भरपूर है, वहाँ रागादि विकल्पों को प्रवेश करने के लिये अवकाश ही नहीं है।

सत्य की प्राप्ति होने के अवसर मिलने पर भी समाज के भय से आज तक सत्य से मुँह मोडकर रखा। अब तो तू अनन्त गुणों के समाज स्वरुप चैतन्य परमात्मा की ओर द्रष्टि कर। समाज की भीड़ से प्रभावित जीवन का त्याग करके स्वतंत्र व्यक्तिगत जीवन जीना ही साधना है। ज्ञानी समाज को नहीं छोडते, बल्कि समाज द्वारा आरोपित विचारों को अपने मस्तिष्क में से बाहर फेंक देते हैं। समाज की आलोचना तो अति दूर, निर्विकल्प आत्मानुभूतिरुप चैतन्य का चमत्कार होने के बाद उन्हें जगत में कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं लगता है।

याद रखो, सद्गुरु के ज्ञान की तिजौरी खोलने की चाबी विनय है। एक छोटी–सी चाबी से बड़े से बड़े ताले को खोला जा सकता है, बड़े से बड़े साम्राज्य को पाया जा सकता है। सद्गुरु के योग में रहकर इस सत्य का बोध सुलभ होता है कि ज्ञान की मुक्ति ही आत्मा की मुक्ति है। क्योंकि ज्ञान ही आत्मा है। ज्ञान को मुक्तरुप से विचरण न करने देना और स्वयं का विकल्प जोडकर यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ उपयोग को भ्रमण कराने का कर्तृत्व ही ज्ञान का बंधन है। ज्ञानी को जागृति है कि भले ही ज्ञान किसी भी ज्ञेय को जाने, ज्ञान आत्मा का स्वभाव है। शास्त्र लिखने के विकल्प भी पर्याय में नाच रहे हो, परन्तु जिस दर्पण में वे प्रतिबिम्बित होते हैं, वह दर्पण कदापि नहीं नाचता है, ऐसी जागृति होने से ज्ञानी समाधि में न होने पर भी समाधि में स्थित है।

ज्ञेय को यथार्थ जानने या न जानने से जीव ज्ञानी या अज्ञानी नाम नहीं पाता है। परन्तु परज्ञेय एवं चैतन्य तत्त्व के बीच भेदज्ञान की धारा बहने के कारण ज्ञानी और न बहने के कारण अज्ञानी होता है। ज्ञानी को बुढापे में आँख कमजोर होने पर साँप, काली रस्सी है, ऐसा जानने में आता है। और

अज्ञानी को साँप, साँप है, ऐसा जानने में आता है। फिर भी ज्ञानी, ज्ञानी है और अज्ञानी, अज्ञानी। क्योंकि ज्ञानी मानते हैं कि परज्ञेय का ज्ञान में प्रवेश हो ही नहीं सकता, पर से मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। वहीं दूसरी ओर अज्ञानी मानते हैं कि यह साँप मुझे काटेगा, उसका जहर मेरे अन्दर चला जायेगा, अब मैं मर जाउंगा।

ज्ञानी कहते हैं कि साँप का जहर शरीर में चला जाये, परन्तु मेरे चैतन्य प्रदेशों में कहीं भी प्रवेश नहीं कर सकता। मैं परिपूर्ण ज्ञायक हूँ, जहाँ जहर तो क्या, राग तो क्या, वीतरागता और केवलज्ञान की पर्याय को प्रवेश करने के लिये भी अवकाश नहीं है। हे चैतन्य परमात्मा! वास्तव में ज्ञान में ज्ञान ही जानने में आता है। परन्तु अज्ञानी को परज्ञेय की रुचि के कारण ज्ञान की अनुभूति में परज्ञेय की अनुभूति का आभास होता है।

हे भव्य! शंका उत्पन्न होते ही शंका को जानने वाले को जान, तूझे तत्क्षण ही सहज समाधान प्राप्त होगा, क्योंकि समाधि ही समाधान है।

33. केवली ही पूर्ण निर्विकल्प

यद्यपि चौथे गुणस्थानवर्ती अविरत सम्यग्द्रष्टी को आत्मा की निर्विकल्प अनुभूति होती है, परन्तु पूर्ण निर्विकल्प अनुभूति नहीं। पूर्ण निर्विकल्प आत्मानुभूति केवली भगवान को होती है। सम्यग्द्रष्टी को ही नहीं, मुनि को भी निर्विकल्प आत्मानुभूति के काल में चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से विकल्प उत्पन्न होते रहते हैं। काया का परिभ्रमण होने पर भी विकल्प का परिभ्रमण रुक गया होने से केवली भगवान जीवनमुक्त हैं। **जो स्व में स्थित है, वही स्वामी है। जिसका नरभव सफल हुआ है, वही नारायण है। समस्त केवली, स्वामी नारायण है। समस्त स्वामी नारायण भी पर ही है। मैं तो ज्ञायकभाव ही हूँ। प्रतिसमय यह भेदज्ञान बना रहे।**

रास्ते पर खड़े व्यक्ति को रास्ते पर खड़े लोग स्पष्ट नहीं दिखते, पर्वत पर स्थित व्यक्ति को रास्ता ही नहीं, घाटी भी स्पष्ट दिखाई देती है। केवली भगवान के केवलज्ञान में हम जानने में आते हैं, उसमें आश्चर्य क्या है? जब प्रवचन में सुनते हो कि मैं भगवान आत्मा हूँ। तब यह जागृति रहे कि मैं भगवान आत्मा हूँ, यह वाणी मेरा स्वरुप नहीं है। वाणी को जानने का रागरुप विकल्प भी मेरा स्वरुप नहीं है। वाणी को जानने के विकल्प को जानने वाली ज्ञान की पर्याय भी मेरा स्वरुप नहीं है। **अरे! लोकालोक को जानने वाली केवलज्ञान की पर्याय भी मेरा स्वरुप नहीं है। मैं तो त्रिकाल परिपूर्ण परमात्मा हूँ। अनादि काल से राग और ज्ञान साथ-साथ यात्रा कर रहे थे, वीतराग होने पर जब राग न रहा अकेला ज्ञान रहा, तब उस ज्ञान को मात्र (केवल) ज्ञान कहते हैं।**

सूक्ष्मद्रष्टि से देखे तो वीतरागता के कारण सर्वज्ञता प्रकट नहीं होती है। वीतरागता चारित्र गुण और सर्वज्ञता ज्ञान गुण का शुद्ध परिणमन है। दोनों गुणों का स्वतंत्र परिणमन है। इससे यह स्पष्ट होता है कि **जब वीतरागता के कारण ज्ञान में ज्ञेय जानने में नहीं आते हैं, तो राग के विकल्प के कारण ज्ञान में ज्ञेय जानने में कैसे आ सकते हैं? राग स्वतंत्र है, ज्ञान स्वतंत्र है। मैं ज्ञानमात्र हूँ। मैं मंगल सूत्र हूँ।**

जैसे विकल्प के बिना दीपक से कुर्सी सहज ही प्रकाशित होती है, ऐसे ही विकल्प के बिना ज्ञान से ज्ञेय सहज ही प्रकाशित होता है, ज्ञान से सिद्ध पद प्रकाशित होता है। सिद्ध पद भी परज्ञेय ही है, मैं नहीं हूँ। मैं तो चैतन्य पद के अतिरिक्त कहीं भी नहीं हूँ।

केवली भगवान को उपदेश देने का विकल्प नहीं होता है। अहो! भव्य जीवों के पुण्योदय से भगवान की दिव्यध्वनि सहज ही खिरती है। तीर्थंकर भगवान को जब भूतकाल में सभी जीवों के प्रति ऐसी भावना जगी थी, कि सभी जीवों को भगवान आत्मा का अनुभव हो। मात्र मनुष्यों को ही नहीं पशुओं को भी समझाने की भावना जगती है। परन्तु उनकी भाषा का ज्ञान न होने के कारण उन्हें समझा नहीं पाते, इस भावना से उन्हें तीर्थंकर प्रकृति

का बंध होता है। जब तीर्थंकर प्रकृति का उदय आता है, तब पूर्ण निर्विकल्प आत्मानुभूति काल में भी सहज ही दिव्यध्वनि छूटती है। समवसरण में मनुष्य और देव ही नहीं, पशु भी अपनी–अपनी भाषाओं में भगवान की वाणी को समझ लेते है। पशु भी इस तत्त्व को सुने और समझे, ऐसी भूतकाल की भावना यहाँ बिना विकल्प ही फलित हुई, ऐसा कह सकते हैं। जब पूर्व में विकल्प था, तब पशुओं के लिये उपदेश न निकला और तीर्थंकर होने के बाद विकल्प न रहा, परन्तु पशुओं को सहज ही उपदेश प्राप्त होता है। इससे समझ सकते हैं कि **विकल्प से कार्य नहीं होता, प्रत्येक द्रव्य का अपनी–अपनी योग्यतानुसार ही परिणमन होता है।**

आज हमें यहाँ केवली भगवान का साक्षात् योग नहीं है, परन्तु उनके द्वारा प्रणीत धर्म का योग प्राप्त हुआ है, वीतराग–वाणी का योग मंगल सूत्र की अनुभूति के लिये क्या पर्याप्त नहीं है? महापुण्य के उदय से प्राप्त जिनवाणी का हमें आदर करना चाहिए। याद रहे, जैसे हमें अक्षर के समुदायरुप समयसार को जमीन पर रख देने से समयसार का अविनय नजर आता है, ऐसे ही **साक्षात् चैतन्य तत्त्व जो कि वास्तविक समयसार है, इसे जमीन पर रखा है, वह भी समयसार का अविनय है। जमीन से उठकर लोक के अग्रभाग पर विराजमान होना ही साक्षात् समयसार का विनय है, निश्चय विनय है।**

34. जो समझ गया, वो समा गया

जब घड़ी का लंगर दायीं ओर जाता है, तब उसमें बायीं ओर जाने की शक्ति इकट्ठी होती है। राग का भाव द्वेष की तैयारी है। इसलिये वीतरागी भगवान ने वीतरागता की प्राप्ति का उपदेश दिया है। कुछ ही विरल जीवों को इस सत्य का बोध हो सकता है। जब घड़ी में लंगर स्थिर हो जाता है, तब काँटों का परिभ्रमण रुक जाता है। ऐसे ही राग–द्वेष रहित वीतराग अवस्था प्रकट होने पर ही संसार परिभ्रमण रुकता है।

मन तो चाहेगा कि थोड़ी देर के लिये किसी व्यक्ति को सच्चा मार्ग दिखा दूँ। मन तो पर में ही उलझता रहता है, मन का कार्य दूसरों को सलाह देना है। इसीलिये सलाह देने वाले को मन्त्री कहते हैं। हे जीव! प्रधानमन्त्री और मुख्यमन्त्री आदि समस्त मन्त्री के विकल्पों से मुक्त होकर चैतन्य स्वभावी भगवान आत्मा को ही मुख्य मान, तब तू प्रधान ऐसे सिद्ध पद को प्राप्त करेगा। **हमें वीतराग धर्म का योग मिला, समझ लो, सिद्ध पद की प्राप्ति की शपथ लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।**

जो मात्र जानकारी इकट्ठी करता है, वह फैलना चाहता है। जो समझ गया, वो समा गया। याद रहे, ज्ञानी को गुरु के पद में कोई रुचि नहीं होती है। ऐसा कौन आत्मानुभवी पुरुष होगा जो त्रिकाल परमात्म पद की अनुभूति का रस चखने के बाद क्षणिक गुरु पद का रस चखना चाहेगा? मैं स्वयं परमात्मा हूँ, आप स्वयं परमात्मा हो।

यह तो आप जानते ही हैं कि नवकार मंत्र सभी पापों का नाश करने वाला है। चैतन्य स्वभावी भगवान आत्मा के आश्रय से नवकार मंत्र के पाठ से बंधने वाले पुण्य सहित समस्त पुण्य एवं अन्य समस्त पापों का नाश होता है। अत: **चैतन्य स्वभावी भगवान आत्मा ही वास्तविक मंगल सूत्र है।** जैसे लोक में विवाह के समय वर एवं वधु कहीं 4, तो कहीं 7, फेरे लगाते हैं। ज्ञानी ने ज्ञान ज्योति एवं अनंत सिद्धों को साक्षी मानकर 47 आदि अनन्त शक्तियों के स्वामी जीव राजा को अपना माना है। मंगल सूत्र को पर्याय में धारण किया है।

हे चैतन्य परमात्मा! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता नहीं है, फिर भी हृदय में कोमलता और वाणी में मृदुता रहे। मात्र प्रसंशक को ही नहीं, निन्दक को भी परमात्मा के रुप में देखे, किसी भी जीव को पर्यायद्रष्टि से न देखें। **गुरु की निन्दा करने वाले जीव को भी परमात्मा के रुप में देखना ही गुरु को समर्पित की गई वास्तविक गुरुदक्षिणा है। याद रहे! परमात्मा को हाथ जोड कर क्षमा करने से स्वयं की पूर्णता में कमी नहीं आ जाती है।**

मंगल सूत्र में लिखित प्रत्येक वचन सत्य है, ऐसा मत मानना और असत्य है, ऐसा भी मत मानना। बस निष्पक्ष भाव से विचार करना। हाँ, एक बार मैंने रुपये की नोट से कहा कि तुम सिर्फ एक कागज के टुकडे हो, नोट मुस्कुराई और बोली, बिलकुल मैं एक कागज का टुकडा हूँ, लेकिन आज तक अपनी जिन्दगी में मैंने कूडेदान का मुँह नहीं देखा। ऐसे ही कागज पर लिखा गया मंगल सूत्र भी कागज का टुकडा ही है, परन्तु मंगल सूत्र कृति से तत्त्वविचार के फल में साक्षात् चैतन्य स्वभावी मंगल सूत्र के प्रति आपके हृदय में भी अहोभाव प्रकट हो। **सुई में वही धागा प्रवेश कर सकता है, जिस धागे में कोई गांठ नहीं हो, वैसे ही मंगल सूत्र को वही जीव धारण कर सकेगा, जिसके हृदय में आग्रह एवं अहंकार की गांठ न होगी।** हे चैतन्य परमात्मा! किसी पूर्णिमा के चाँद ने मंगल की यात्रा की है, मैं चैतन्य स्वभावी साक्षात् मंगल सूत्र अपने चैतन्यलोक में ही स्थित हूँ।

ज्ञानियों का स्वरुप में समा जाना ही संसार की अस्थिरता और स्वरुप की स्थिरता का परिचय देने के लिये पर्याप्त है। क्योंकि कभी–कभी जो बात वाणी नहीं कह सकती है, वही बात मौन कह देता है। कदाचित् कोई अज्ञानी ज्ञानी की स्वरुप स्थिरता को न समझ सके, तो भी क्या? सूरज तो तब भी होता है, जब दुनिया में करोड़ों लोग सोये रहते हैं।

हे चैतन्य परमात्मा! हे भव्य! आयुष्य के उदय समाप्ति का ज्ञान नहीं है, परन्तु मंगल सूत्र की समझ ही पर्याप्त है। आप जहाँ भी रहो, जैसे भी उदय के साथ रहो, प्रतिसमय यह जागृति बनी रहे कि आयु का उदय समाप्त होने पर भी मैं चैतन्य परमात्मा समाप्त होने वाला नहीं हूँ। मैं मंगल सूत्रमय चैतन्य परमात्मा सदैव हूँ, हूँ, हूँ...।

चैतन्य स्वरुपी मंगल सूत्र को
पर्याय में अवधारण करके
निर्विकल्प आत्मानुभूति को उपलब्ध
समस्त सम्यग्द्रष्टी ज्ञानी धर्मात्माओं को
सविनय समर्पित

प्रथम आवृत्ति : 25 जुलाई, 2015

प्रत : 1000

प्राप्ति स्थान

आध्यात्मिक साधना केन्द्र-प्रधान केन्द्र
पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी प्रवचन हॉल,
चोगठ रोड, उमराला, जि. भावनगर (गुज.)
+91-2843-235202/03 : किशोरभाई जैन
+91-9898245201 : धर्मेन्द्रभाई जैन

आध्यात्मिक साधना केन्द्र-मुंबई केन्द्र
द व्हाईट गोल्ड, 72/74 कंसारा चाल,
पायधुनी के पास, मुंबई-400 002.
+91-9460058839 : धनराजभाई हुंडिया
+91-9223278899 : मांगीलालभाई चंदन

आध्यात्मिक साधना केन्द्र-अहमदाबाद केन्द्र
न.10 संतकृपा सोसायटी, पवन सोसायटी के पास,
बलदेवनगर के सामने, 132 फीट रिंग रोड,
जीवराज पार्क, अहमदाबाद - 51.
+91-9913072548 : कोकीलाबेन गीरीशभाई रत्नोत्तर

आध्यात्मिक साधना केन्द्र-चितौड़गढ केन्द्र
63/G सैक्टर 5, गांधीनगर, चितौड़गढ-312 001.(राज.)
+91-9460058839 : राजेन्द्रकुमार जैन
+91-9829242148 : महेन्द्रकुमार सिरोया

मुद्रक : मल्टी ग्राफिक्स
फोन : 022-23884222/23873222, मो. : +91-9987999299
ईमेल : support@multygraphics.com
वेबसाईट : www.multygraphics.com | www.shrutgyan.com

लेखक की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ

www. fulchandshastri.com

» आत्मसिद्धि शास्त्र संक्षिप्त टीका (142 देशों की भाषाओं में)
» ज्ञान से ज्ञायक तक (हिन्दी, गुजराती)
» क्रमबद्ध पुरुषार्थ (हिन्दी, गुजराती)
» आत्मसिद्धि अनुशीलन (गुजराती, अंग्रजी)
» ज्ञायकभाव प्रकाशक-समयसार टीका (हिन्दी, गुजराती, अंग्रजी)
» मरण का हरण (हिन्दी, गुजराती)
» क्षणिक का बोध और नित्य का अनुभव (हिन्दी, गुजराती, अंग्रजी)
» आतंकवाद में अनेकांतवाद (हिन्दी, गुजराती, अंग्रजी, जापानीझ)
» महावीर का वारिस कौन? (गुजराती, हिन्दी)
» मुझे मत मारो (हिन्दी, गुजराती, इन्डोनेशियन, बताक)
» छहढाला-षटपद विवेचन (हिन्दी)
» गुणाधिपति आत्मा (गुजराती, हिन्दी, अंग्रजी)
» अंक अंकित अध्यात्म (गुजराती, हिन्दी, अंग्रेजी)
» पुण्यविराम (गुजराती, हिन्दी, अंग्रजी)
» वर्धमान से महावीर-एक नाटक (हिन्दी)
» मंगलसूत्र (गुजराती)
» ज्ञानदर्पण सहस्त्री (हिन्दी, गुजराती)
» जैनधर्म रहस्य (हिन्दी, गुजराती, अंग्रजी)
» आध्यात्मिक साधना प्रश्नोत्तरमाला (गुजराती)
» पंच परमागम (अंग्रजी लिप्यंतरण)
» स्वरुप ही ऐसा है (गुजराती, हिन्दी)
» जैनसिद्धांत का वटवृक्ष (गुजराती, हिन्दी, अंग्रजी)

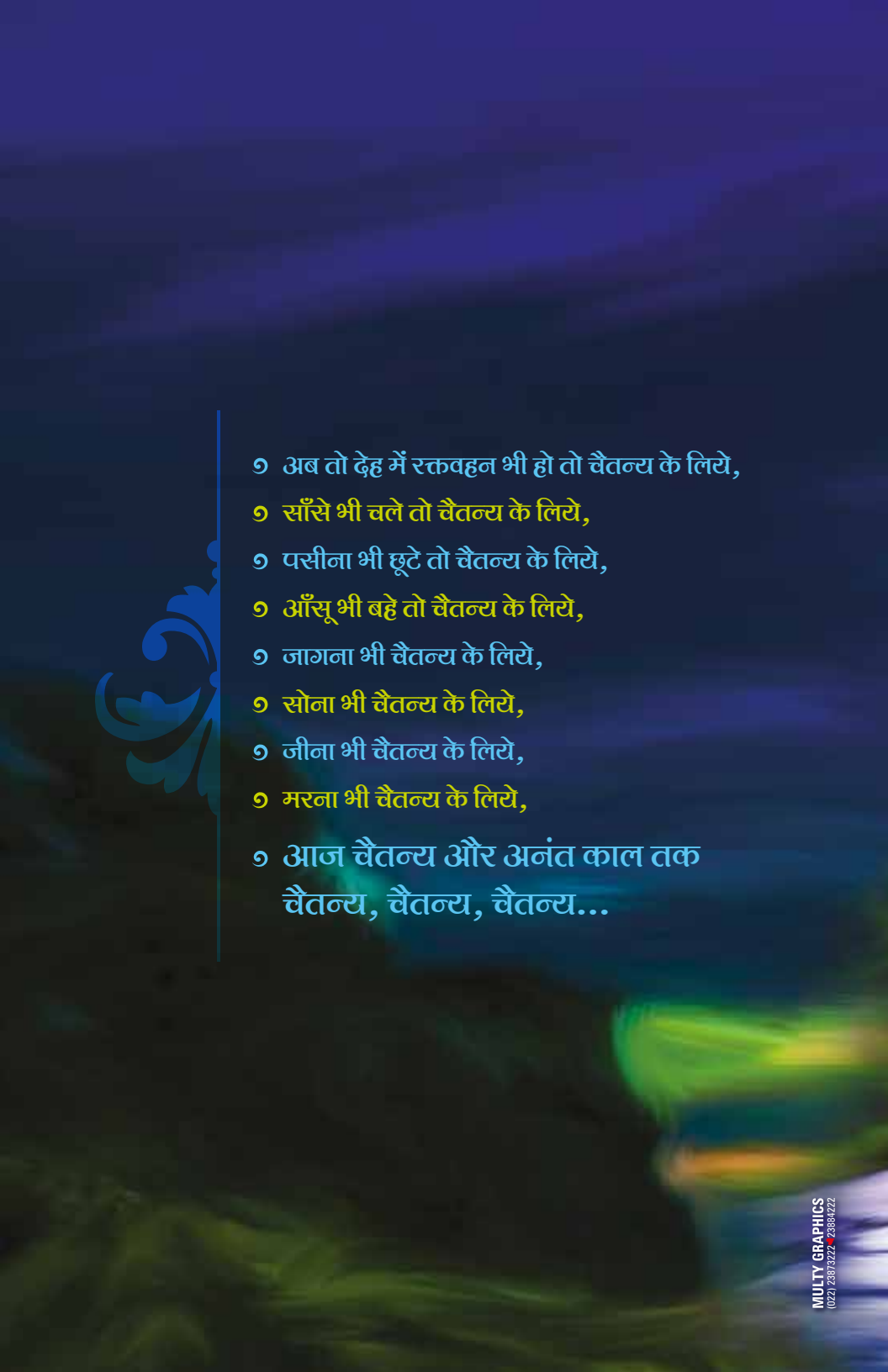

- अब तो देह में रक्तवहन भी हो तो चैतन्य के लिये,
- साँसे भी चले तो चैतन्य के लिये,
- पसीना भी छूटे तो चैतन्य के लिये,
- आँसू भी बहे तो चैतन्य के लिये,
- जागना भी चैतन्य के लिये,
- सोना भी चैतन्य के लिये,
- जीना भी चैतन्य के लिये,
- मरना भी चैतन्य के लिये,
- **आज चैतन्य और अनंत काल तक चैतन्य, चैतन्य, चैतन्य...**

MULTY GRAPHICS
(022) 23873222 23884222